वर्ष १०; अंक १

श्रीकृष्णाय नमः

कार्तिक १९९२

अक्टूबर

वार्षिक चन्दा ३)

सम्पादक

म० कृष्णानन्द, भूमानन्द

एक प्रति ।)

विषय सूची

नं०	लेख	लेखक	पृष्ठ
१.	वेदोपदेश	...	१
२.	पुराण-गाथा	[ले० श्रीस्वामी भोले बाबा जी	२
३.	आवागमन	[ले० श्री यमुनाप्रसाद श्री वास्तव नरसिंह पुर	७
४.	भक्त और भगवान	[रचयिता जगन्नाथ मिश्र गौड़ 'कमल' विद्यालंकार	१०
५.	निर्णय	[ले० श्री अमृतवाक ब्रह्ममित्र	११
६.	महात्मा फजल अयाज	...	१३
७.	श्री राम का नाम	[रचयिता श्री लक्ष्मी मिस्त्री 'रमा'	१९
८.	सम्राट् अशोक व जैन	[ले० श्री मधुमङ्गल श्री मिश्र बी. ए.	२१
९.	भजन	...	२८

भक्ति के नियम

१. भगवान् की भक्ति का प्रचार करना, गो रक्षा और उसके लिए गोचर भूमि छुड़वाना, जलाशय बनवाना, मनुष्य मात्र के लिए शिक्षा का प्रचार करना. वैदिक अनुभूत औषधियों का प्रचार करना, ग्रामों में परस्पर के झगड़े और वैमनस्य मिटा कर शान्ति व प्रेम बढ़ाना, सब संस्थाओं में भगवद्भक्ति और धर्म का भाव जाग्रत करना, राजा और प्रजा सब ही का हित चिन्तन करना।

२. यह पत्र प्रतिमास की पूर्णिमा को प्रकाशित हुआ करेगा।

३. भक्ति का वार्षिक चन्दा सर्व साधारण से २) होगा

४. ... ...अार २५) या इस अधिक देंगे ... संरक्षक और ५) देने वाले सहायक होंगे।

५. बाहर का कोई भी व्यापारिक विज्ञापन नहीं लिया जायगा।

६. लेखोंको प्रकाशित करना, न करना, घटाना व बढ़ाना सर्वथा सम्पादक के अधिकार में होगा।

७. लेख सम्बन्धी पत्र व्यवहार सम्पादक के नामसे और प्रबन्ध सम्बन्धी पत्रव्यवहार मैनेजर भक्ति के नाम से होना चाहिए

८. जिन ग्राहकों के पास जिस मास की "भक्ति" न पहुंचे, उनको स्थानीय पोस्ट आफिस में पूछ कर उस मास की अमावस्या से पूर्व कार्यालय में सूचना भेजनी चाहिये। स्थानीय पोस्ट आफिस में बिना पड़ताल किये अथवा अमावस्या के बाद सूचना आने पर "भक्ति" नहीं भेजी जायगी।

९. पत्रोत्तर के लिये जवाबी, कार्ड भेजना चाहिए।

भक्ति के संरक्षक और सहायक

राव श्रीराम जी रईस नांगल	
भक्त नन्दकिशोर जी चर्खी दादरी	१२५)
डा० गोपालदास जी रईस लाहौर	१२१)
धर्म सिंह मावजी जेठवा कोलरीप्रोप्राइटर झरिया	१११)
आनरेबिल डा० गोकलचन्द जी नारंग वज़ीर लोकल सेल्फ गवर्नमेन्ट लाहौर	१२०)
बाई बदामो देवी पुत्री लाला गनेशीलाल चर्खीदादरी	१०१)
श्रीमती रानी निहालकोर धर्मपत्नी कमान राव बहादुर बलबीरसिंह जी	१०१)
राव बहादुर, कमान राव बलबीर सिंह जी ओ० बी० ई० रामपुरा	१०१)
चौधरी शिवसहाय जी कोसली	५१)
लाला श्यामलाल जी कपूर दिल्ली	५१)
महाशय शोभाराम जी डूंगरवास	५१)
डाक्टर झवेरभाई नारायणभाई देसाई महुधा जिला कैरा	२५)
पण्डित पन्नालाल जी तोपखाना नं० ५ अम्बाला	२५)
चौधरी उमराव सिंह पहाड़ी धीरज दिल्ली	२५)
पण्डित जयराम जी 'सनातन' देहली	१५)
सूबेदार मेजर दीपचन्द जी	५)
मंगलसिंह गनर नं० ५ तोपखाना अम्बाला	५)
	५

"भक्तिप्रेस" आश्रम, रेवाड़ी

महात्मा सूरदास जी

बांह छुड़ाये जात हौ, निबल जानिकै मोहि।
हिरदै ते जब जाहुगो मर्द बदौंगो तोहि॥

जनता में भगवद्भक्ति भाव को जाग्रत करने वाली सचित्र मासिक पत्रिका।

वर्ष १० | श्रीभगवद्भक्ति आश्रम रेवाड़ी, कार्तिक, ता० १ अक्टूबर, १९३५ | अंक १ पूर्ण संख्या १०९

वेदोपदेश

याभिः शचीभिर्वृषणा परावृजं प्रान्धं श्रोणं चक्षस एतवे कृथः।
याभिर्वर्तिकां ग्रसितामुञ्चतं ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥ १ ॥

अभीष्ट-वर्षिद्वय, जिन सब कर्मों द्वारा पंगु परावृज ऋषिको गमन-समर्थ किया था, अन्ध ऋजाश्वको दृष्टि समर्थ किया था और भरतज्ञानु श्रोणको गमन-समर्थ किया था तथा जिन कार्योंद्वारा वृक से गृहीत वर्त्तिका नामकी स्त्री पत्नी को मुक्त किया था, अश्विद्वय, उन उपायों से आओ ॥ १ ॥

याभिः सिन्धुं मधुमन्तमसश्चतं वसिष्ठं याभिरजरावजिन्वतम्।
याभिः कुत्सं श्रुतर्यं नर्यमावतं ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥ २ ॥

अजर अश्विनीकुमारद्वय, जिन उपायों द्वारा मधुमयी नदीको प्रवाहित किया था, जिन उपायों द्वारा वसिष्ठ को प्रीत और कुत्स, श्रुतर्य तथा नर्य नामके ऋषियों की रक्षा की थी, अश्विद्वय, उनके साथ आओ ॥ २ ॥

पुराण-गाथा

ब्रह्मादि कृत नृसिंह स्तुति

[ले० श्रीस्वामी भोले बाबा जी]

नारद-हे शौनक! दैत्यराज हिरण्यकशिपु का पेट भारने के पीछे उसके अनुचरों ने देखा कि नृसिंह भगवान् के नेत्र क्रोध से लाल २ हो रहे हैं। और ऐसे विकराल यानी भयंकर हैं कि उनकी तरफ देखने से डर लगता है, भगवान् का मुख फैला हुआ है अपनी जिह्वा से वे उसको चाट रहे हैं, भगवान् के गले के बाल रक्त की छींटों से लाल हो रहे हैं, उन छींटों से ऐसा प्रतीत होता है कि उनके चेहरे पर रक्त चन्दन छिड़क दिया हो। जैसे हाथी को मार कर सिंह ने उसकी आंतों की माला अपने गले में पहिनली हो, ऐसे ही नृसिंह भगवान् उस समय शोभा दे रहे थे। नखों की धार से चीरे हुए हृदय कमल वाले दैत्य को छोड़ कर भगवान् उसके अनुचरों को हथियार उठाये हुए सामने मारने को तैयार खड़े हुए देख कर उनके ऊपर झपटे और अपनी हजारों भुजाओं के तीक्ष्ण नखों से हजारों दैत्यों को मार कर पृथिवी के ऊपर गिरा दिया। भगवान् की जटाओं से हिलाये हुए बादल तितर बितर हो गये, आकाश स्पष्ट दिखाई देने लगा, बादलों में छुपे हुए इन्द्रादि देवता भगवान् के युद्ध का तमाशा स्पष्ट देखने लगे, भगवान् की दृष्टि से नक्षत्र और तारों की चमक फीकी पड़ गयी, भगवान् के श्वास से हत हुए समुद्र खलबलाने लगे और भगवान् की भयंकर गर्ज से दिशाओं के हाथी चिंघारने लगे! भगवान् की जटाओं से फेंके हुए विमानों से भरा हुआ स्वर्ग हिलने लगा और भगवान् के पैरों की धमक से पृथिवी डिगमिगाने लगी, उनके तेज से पर्वत उखड़ गये और उनके तेज से आकाश और दिशायें शोभा हीन हो गयीं! यानी तेज में छुप गयीं।

हे शौनक! पश्चात् जब अपने सामने युद्ध करने वाला कोई नहीं देखा, तब भगवान् राज सभा में उत्तम राजसिंहासन पर विराजमान हो गये। प्रचंड मुख वाले और एकत्र किये हुए तेज वाले भगवान् को देख कर ब्रह्मादिक देवता उनके समीप जाने को समर्थ न हुए! तीनों लोकों के मस्तक के ज्वर रूप आदि दैत्य को हरि ने युद्ध में मार दिया है, ऐसा देख कर अप्सराओं के मुख अत्यन्त हर्ष के कारण प्रफुल्लित हो गये और वे भगवान् के ऊपर पुष्पों की वर्षा करने लगीं। उस समय देखने की इच्छा से बहुत से देवता आ गये थे, उनके दिव्य विमानों की पंक्तियों से आकाश भर गया था। वे सब देवता नगाड़े और ढोल बजाने लगे, गंधर्व गाने लगे और अप्सरायें नाचने लगीं। वहां पर ब्रह्मा, रुद्र, इन्द्रादि देवता, भृगु

आदि ऋषि, अर्यमादि पितर, सिद्ध, विद्याधर, महा उरग, मनु, प्रजापति, गंधर्व, अप्सरा, नारद, यक्ष, किंपुरुष, वेताल, किन्नर, सुनन्द कुमुदादि विष्णु के पार्षद् ये सब हाथ जोड़ कर तीव्र तेज वाले, आसन पर बैठे हुए नरशार्दूल की दूर खड़े होकर भिन्न २ स्तुति करने लगे-

ब्रह्मा-हे देवों के देव! आप अनन्त हैं यानी आपका अन्त नहीं है, क्योंकि आपकी शक्तियों का अन्त नहीं है, किसी ने आज तक आपकी शक्तियों का पार नहीं पाया है, न कोई आगे पार पावेगा। कोई कहे कि किसी ने पार क्यों नहीं पाया, और कोई आगे क्यों नहीं पावेगा, तो उसका उत्तर यह है कि आपके प्रभाव यानी पराक्रम विचित्र हैं, किसी की समझ में ही नहीं आते! जब समझ में ही नहीं आते, तो उनका पार कोई कैसे पा सका है। नहीं पासका! आप के कर्म पवित्र हैं, उन कर्मों के सुनने मात्र से मनुष्यों के अन्तःकरण शुद्ध हो जाते हैं। यदि कोई कहे कि आपके विचित्र प्रभाव कौन से हैं, तो उसका उत्तर यह है कि लीला मात्र से माया के गुणों के द्वारा आप इस विश्व की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय कर देते हैं, फिर भी आप कुछ भी नहीं करते, क्योंकि आप अव्यय स्वरूप हैं, कभी विकार को नहीं प्राप्त होते किन्तु सर्वदा अविकारी ही रहते हैं, ऐसे अद्भुत महिमा वाले आप को कौन जान सका है, जाने बिना स्तुति नहीं हो सकी, इसलिये मैं आपको केवल नमस्कार ही करता हूं, स्तुति नहीं कर सका। नमस्कार से ही आप प्रसन्न हूजिये।

श्रीरुद्र-हे अच्युत! आप तो भक्तवत्सल हैं। भक्तों के पालने को और अभक्तों के घालने को अपनी माया से शरीर धारण कर लेते हैं। आपके कोप करने का यह समय नहीं है, सहस्र चौयुगी का अन्त आपके कोप करने का समय है, इस समय आप को कोप न करना चाहिये! यदि आप कहें कि यह दैत्य कोप करने योग्य है, इस पर कोप करना ही चाहिये, तो यह बात नहीं है, क्योंकि यह तो छोटा सा तुच्छ राक्षस है, और मर भी चुका है, अब इस पर कोप करने का काम नहीं है, अब तो आप उसके पुत्र अपने भक्त प्रहलाद को पालिये। यह आप का कोप उसी की रक्षा करने के लिये था भी, इसलिये कोप का त्याग करके भक्त का पालन कीजिये! वह आपकी शरण में आया हुआ है, आप का नाम शरणागत वत्सल है ही, उसी अपने नाम को आप सार्थक कीजिये!

श्रीरुद्र की स्तुति सुन कर इन्द्र 'हमको यज्ञ में हविष की भागादि का लाभ हुआ है, वह हमारा पुरुषार्थ नहीं है किन्तु हमारा पुरुषार्थ तो आपकी परिचर्या यानी सेवा ही है, इसलिये आपने इस पर क्रोध करके अपना कार्य ही सिद्ध किया है, और वह आपका कार्य सिद्ध हो चुका, इसलिये क्रोध का त्याग कीजिये! इस अभिप्राय से इस प्रकार कहने लगा-

इन्द्र-हे परम! आपने हमारी रक्षा की है, इस दैत्य से आपने हमारा भाग छीन कर हमको दिया है परन्तु यह भाग हमारा नहीं है, आपका ही भाग है, क्योंकि आप ही परमार्थ से भोक्ता हैं, हम नहीं हैं, हम जो अब तक अपने को भोक्ता समझते थे, वह हमारी भूल थी, क्योंकि हमारा हृदय कमल जो आपके रहने का निवास है, उसको इस दैत्य ने ढांक रक्खा था, उसके भय के कारण से हमारे हृदय में स्थित भी आपको हम देख नहीं सके

थे ! अब आपने उसको मार कर हमारे हृदय में से निकाल दिया है, हमारा भय दूर हो गया है, इसलिये अब मैं आपको स्पष्ट देखता हूं ! यदि आप कहें कि तुझे तीनों लोकों का राज्य देने के लिये मैंने यह उद्यम किया है, तो यह बात नहीं है, यह तीनों लोकों का राज्य तो बहुत ही तुच्छ है, आपके चरणों की सेवा करने में ही जिनको प्रेम है, वे तो मुक्ति का भी आदर नहीं करते, तब काल से ग्रस्त दूसरे लोकों की इच्छा क्यों करेंगे। नहीं करेंगे। कल्पवृक्ष को छोड़ कर आक डाक आदि का चतुर पुरुष सेवन नहीं कर सका, कोई मूढ़ भले ही ऐसा करे ! इसलिये मुझे तो आपके चरणों की सेवा ही पर्याप्त है, तीनों लोकों का राज्य मुझे नहीं चाहिये।

तप की प्रवृत्ति करके आपने हमारे ऊपर परम अनुग्रह किया है, ऐसा विचार कर ऋषि बोले:-

ऋषि-हे शरण्यपाल ! आपने हम को अपने ध्यान रूप परम तप का जो उपदेश दिया है, वह आपने हमारे ऊपर महान् अनुग्रह किया है। यदि आप कहें कि वह परम तप कौन सा है, तो सुनिये ! यह समस्त विश्व आप में लीन है, जिस तप से आप अपने में लीन इस विश्व को उत्पन्न करते हैं, वह ही परम तप है। इस परम तप को इस दैत्य ने लुप्त कर दिया था ! आज आपने हमारी रक्षा के लिये यह शरीर ग्रहण करके और दैत्य को मार कर हमको यह ही आज्ञा दी है कि तुम फिर तप करो ! अब तुम्हारे तप में कोई बाधा नहीं पड़ेगी, क्योंकि तप में बाधा करने वाले दैत्य को मैंने मार दिया है, अब तुम निःशंक हो कर तप करो और मुझ में स्थित विश्व को पूर्व के समान देखो ! ऐसा उपदेश देने वाले आपको नमस्कार है।

पितर श्राद्ध का उद्धार करने से उपकार मान कर परम उपकारी नृसिंह से कहने लगे:-

पितर-हे नृसिंह ! ! हमारे पुत्रों के श्रद्धा से दिये हुए पिंडों को यह दैत्य बलात्कार से छीन लेता था और तीर्थ स्नान के समय उनके दिये हुए तिलोदक को आप ही पी जाता था, आपने उसकी चर्बी को नखों से फाड़ कर उसके उदर में से निकाल कर उन पिंडों को और तिलोदक को हम को दिया है। आप समस्त धर्मों के रक्षक हैं आप को नमस्कार है। भाव यह है कि चर्बी का फाड़ना ही इसमें रक्खे हुए पिंडों का उद्धार यानी निकालना है।

सिद्ध-हे नृहरे ! हमको योग के साधनों से अनेक प्रकार की अणिमादि सिद्धियां प्राप्त थीं, उन सिद्धियों को योग और तप के बल से इस दुष्ट ने हर लिया था, इसी कारण से इसको बड़ा भारी अभिमान हो गया था। इस अभिमानी के पेट को आपने नखों से चीर कर हमारी सिद्धियों को फिर से दिलवा दिया है, आपको हम प्रणाम करते हैं।

नाग-हे सर्व शक्तिमान ! हमारे फणों में अनेक रत्न थे और हमारे पास बहुत से स्त्री रूप रत्न थे। उन सब रत्नों को और स्त्री रत्नों को इस पापी ने छीन लिया था। उस पापी की छाती को फाड़ कर आपने हमको और हमारी स्त्रियों को आनन्द दिया है, आपको नमस्कार है।

मनु-हे धर्म रक्षक ! हम मनु आपकी आज्ञा के करने वाले हैं। इस दितिपुत्र ने धर्म की समाज मर्यादों को तोड़ दिया था। न वर्ण रहे थे, न आश्रम रहे थे, सब मनुष्य धर्म से विमुख और अधर्म में रत हो गये थे, न कोई वेद को मानता था, न ईश्वर को मानता था। सब के सब वर्ण

संकर होने की चेष्टा कर रहे थे। आपने उस दुष्ट को मार दिया है। हे प्रभो! हम किंकरों को आप आज्ञा दीजिये कि हम आपकी कौनसी सेवा करें।

प्रजापति-हे परमेश्वर! हम प्रजाओं के ईश्वर हैं, आप ने ही हमको प्रजाओं का ईश्वर बनाया है। आपकी आज्ञा से हम प्रजाओं को उत्पन्न करते थे। इस दुष्ट ने हमको प्रजा उत्पन्न करने के लिये मना कर दिया था, इसलिये हम प्रजाओं को उत्पन्न नहीं कर सके थे। अब आपने इसको मार दिया है, चिरी हुई छाती वाला यह पृथिवी पर पड़ा हुआ है! आज से पीछे हम पूर्व के समान प्रजाओं को उत्पन्न करेंगे। बड़े हर्ष की बात है। आप रुद्र मूर्ति का यह अवतार जगत् का मंगल करने वाला है। आप को नमस्कार है।

गंधर्व-हे विभो! आप नट के समान जो जो लीलायें करते हैं, हम आपके नटनाट्य के गाने वाले हैं, इस दुष्ट ने हमको अपने बल और वीर्य से अपने वश कर रक्खा था, इसलिये हम आप की लीलाओं का गान नहीं कर सके थे! आप ने इस दुष्ट को इस दुर्दशा को पहुंचा दिया है यह प्राण हीन होकर पृथिवी के ऊपर पड़ा हुआ है, सांस तक भी नहीं ले सका इसका शरीर धूल से भर गया है। सच है कि उत्पथगामी की कुशल नहीं हो सकी किन्तु इस लोक में निन्दा और परलोक में अधोगति ही होती है। इस की दुर्दशा को देख कर कोई चतुर पुरुष धर्म की मर्यादा को नहीं तोड़ेगा, किन्तु सब धर्म मर्यादा पर ही चलेंगे। यदि कोई तोड़ेगा, तो उसकी भी यह ही दुर्दशा होगी कि लोक और परलोक दोनों से भ्रष्ट होगा।

चारण-हे हरे! आपके चरण कमल जन्म मरण रूप संसार के निकृंतक हैं यानी नष्ट करने वाले हैं। इस असुर ने हमारे हृदय में आकर आप के चरणों को छुपा दिया था, इसलिये इसके भय से हम आपके चरणों का ध्यान नहीं कर सके थे। अब आप ने साधुओं के हृदय में भय उत्पन्न करने वाले इस असुर को मार दिया है, और हमारा भय दूर हो गया है, इसलिये हम अब आप के चरणों में ही मन लगावेंगे, संसार के भोगों में आसक्त नहीं होंगे।

यक्ष-हे नर हरे! आप के अनुचर तो बहुत हैं, हम आपके मुख्य सेवक हैं, आपके सिवाय हमारी दूसरी गति नहीं है, निष्काम कर्मों के द्वारा हम आप की ही सेवा करते थे परन्तु इस दुष्ट और बली दिति के पुत्र ने हमको वाहक बना लिया था यानी अपनी पालकी यह हम से उठवाता था, इसलिये आपकी प्रीति के लिये कर्म करके हम आपकी सेवा नहीं कर सके थे। सब लोग इस दैत्य ने दुःखी कर रक्खे हैं, ऐसा जान कर आप पच्चीसवें ने इसको पंचत्व को प्राप्त कर दिया है यानी मार दिया है, अब हम आपकी ही सेवा करेंगे, अन्य की नहीं करेंगे। (पांच महाभूत, पांच ज्ञानेन्द्रियां, पांच कर्मेन्द्रियां, पांच प्राण और चार अन्तःकरण ये चौबीस तत्व हैं और पच्चीसवें सब के आत्मा भगवान् हैं)।

किंपुरुष-हे ईश्वर! हम किंपुरुष हैं, आप महा पुरुष हैं, यह कुपुरुष है। इस तुच्छ पुरुष को आपने मार डाला है। यदि आप कहें कि यह तो महान् दैत्य था, इसको मैंने मारा है, इसलिये इसको कु पुरुष कैसे कहते हो महान् क्यों नहीं कहते, तो यह बात नहीं है, यह महान् नहीं है, महान् तो आप ही हैं, आपने इसको मारा भी नहीं है, यह तो पापी होने से और साधु पुरुषों के

धिक्कार करने से आप ही मर गया है। भाव यह है कि आप किसी को नहीं मारते हैं, अपने पाप से प्राणी आप ही मर जाता है।

वैतालिक-हे गुण निधान ! सभाओं में और यज्ञों में हम आपका यश गाकर महान् पूजा को प्राप्त होते थे। इस दैत्य अधमने हमको आप का यश गाने के लिये मने कर दिया था, इसलिये हम आप का यश नहीं गा सके थे। आनन्द की बात है कि आपने इस दुर्जन को मार दिया है। जैसे रोग के कारण से मनुष्य को भूख नहीं लगती और रस वाली वस्तु फीकी लगती है, इसी प्रकार इस राक्षस रूप रोग के कारण से आप का सरस यश भी हमको विरस लगता था। जैसे निरोगी मनुष्य को खूब भूख लगती है और भोजन में स्वाद भी आता है, इसी प्रकार इसके मर जाने से हम निरोग हो गये हैं और अब हमको आपका यश गाने में रस आवेगा।

किन्नर-हे ईश ! हम किन्नर गण हैं, आपके अनुचर हैं, इस दितिपुत्र ने हमको बेगार में पकड़ रक्खा था, इसलिये जैसे स्त्री पुत्रों में आसक्त मनुष्य आप का भजन नहीं कर सका, इसी प्रकार हम आप का भजन नहीं कर सके थे। अब आपने हमारे इस पाप को दूर के हम को निष्पाप कर दिया है, अब हम स्वतन्त्र हो कर आप का निरन्तर भजन करेंगे।

विष्णु पार्षद्-हे जगन्नाथ ! आप भक्तों को आश्रय देने वाले हैं। यह संसार अनादि है, जब २ धर्म की हानि और अधर्म की वृद्धि होती है, तब २ युग २ में देवों का सज्जनों का पालन करने के लिये और अधर्मी असुरों का नाश करने के लिये आप अवतार धारण करते हैं, आप के अनेक अवतार हमने देखे हैं। हंस का रूप धारण करके ब्रह्मा और सनत्कुमारों को आपने तत्त्व का उपदेश किया था, उस आप के हंस अवतार को हमने देखा है ! अदिति के गर्भ से कश्यप के वीर्य से उत्पन्न हो कर तीन पद पृथिवी के व्याज से आपने दो पदों से समस्त ब्रह्माण्ड को नाप लिया था, आप के त्रिविक्रम वामन अवतार का हमने दर्शन किया है। कर्दम ऋषि के वीर्य से मनुपुत्री देवहूति के उदर से उत्पन्न हो कर आपने अपनी माता को निमित्त बना कर हम सब के लिये सांख्य नाम के शास्त्र द्वारा समस्त तत्त्वों का और परमतत्त्वों का निरूपण किया था, उस आपके कपिल स्वरूप को देखने का सौभाग्य हम को प्राप्त हो चुका है। और भी आपके अनेक मत्स्य, कच्छप आदि अवतार हमारे देखने में आये हैं, आपके चतुर्भुजी विष्णु स्वरूप को तो हम सर्वदा देखते ही है, परन्तु आज का सा नरहरि रूप तो हमने आज तक कभी देखा ही नहीं है। यह तो महान् अद्भुत स्वरूप है। कभी आप नर प्रतीत होते हैं, कभी हरि यानी सिंह दिखायी देते हैं, समझ में नहीं आता कि आप नर हैं अथवा सिंह हैं अथवा दोनों ही हैं अथवा एक भी नहीं हैं, आप को देख कर हमारी बुद्धि ऐसे चकराती है, जैसे अज्ञानियों की बुद्धि जगत् को देख कर चकराती है, कोई जगत् को सत्य कहते हैं, कोई असत्य कहते हैं, कोई सत्यासत्य कहते हैं, कोई कहते हैं कि जगत् है ही नहीं, कोई कहते हैं कि जगत् तो है, ब्रह्म कहीं नहीं है, कोई कहते हैं कि ब्रह्म ही है, जगत् नहीं है। जैसे जगत् और ब्रह्म के विषय में वादियों का मत भेद है, इसी प्रकार आपके इस स्वरूप के विषय में हमारा मत भेद है। मतभेद भले ही हो, फिर भी आप का यह स्वरूप मंगल रूप है, क्योंकि इस रूप से आपने अपने पार्षद इस दैत्य को, जो

अपने धाम से भ्रष्ट हो गया था, अपने धाम में पहुंचा दिया है, इसलिये आप ने दैत्य का श्रेय तो किया ही है, समस्त प्रजा का भी श्रेय किया है, क्योंकि इस स्वरूप का ध्यान करके बहुत से पापी संसार समुद्र से तर जांयगें। यद्यपि आपका यह स्वरूप भयानक है, फिर भी आपके अभक्तों के लिये भय कारक है, भक्तों के लिये तो अभय कारक और भय हारक ही है। इसलिये आप के किंकर हम तो इस स्वरूप को सुखकारक ही समझते हैं। समझते क्या हैं। सुख कारक है ही।

पाठक! आगे नारद जी प्रहलाद की करी हुई नरसिंह की स्तुति का वर्णन करेंगे, उसको आगे के लेख में आपके दृष्टि गोचर करेंगे। भक्तों के लिये वह अत्यन्त ही अहलाद दायक होगा।

कुं०—शुभ गाथा नरसिंह की, पढ़ें सुनें नर धीर।
भक्ति लहें जगदीश की, मिट जावे भव पीर॥
मिट जावे भव पीर, विष्णु पद अक्षय पावें।
मन हो गंगा नीर, शोक भय मोह नशावें॥
भोला! पढ़ बहु ग्रन्थ, पचा मत अब तू माथा।
पढ़ सादर सद्ग्रन्थ, भक्त भगवत की गाथा॥

आवागमन

गतांक से आगे

[ले० श्री यमुनाप्रशाद श्रीवास्तव नरसिंह पुर]

प्राणायाम के अभाव से ही शरीर जीर्ण-शीर्ण हो कर अशक्त हो जाता है और जीवात्मा के रहने योग्य नहीं रहता वह उसे छोड़ कर चला जाना चाहता है। इन्द्रियां भी शिथिल पड़कर आत्मा के साथ चलने को तैय्यार हो जाती हैं और धीरे २ अपना काम बन्द करके प्राणों के पास इकट्ठी होती हैं। उस समय प्राणी बे होश हो जाता है और ऊंचे २ श्वांस भरने लगता है। उसे यह ज्ञान नहीं रहता कि उसके आस पास क्या हो रहा है। परन्तु वास्तव में वह अपनी अगली पिछली करतूतो से घिरा होता है और उन्हें देख २ कर दुःखी होता और पछता कर यह कहता है:-

दुखं जन्म जरा दुखं दुखं मृत्यु पुनः पुनः।
संसार मंडल दुखं पश्यन्ते यत्र जन्तवः॥

भावार्थ

जन्म भी दुख है, बुढ़ापा भी दुख है, बार २ मरना भी दुख है बहुत क्या कहें यह सब संसार ही दुख रूप है।

अन्त में जो करतूत प्रबल होती है संस्कार वश वह उसी को पसन्द करता है और उसी योनि में जाने की भावना करता है:-

जो जो जा जा भाव को, सुमिरत जावत देह।

सो सो पारथ ! मिलत हैं, भाव शीघ्र होते है ॥

और उसीके उपयुक्त वह शरीर भी स्वयं तैय्यार करता है। मृत्तिकामयी देह छोड़ कर दिव्य देह धारण करता है और अन्धकार से निकल कर प्रकाश में आता है इसीसे जीवात्मा को पृथ्वीमय-आकाशमय, तेजोमय, अतेजोमय, धर्ममय, अधर्ममय, क्रोधमय, अक्रोधमय आदि कहते हैं। वही सबका स्वामी है। उसी के भोग और भोगों के साधनों के हेतु ही यह सब कुछ बिखरा पड़ा है। सर्वमय होने कारण ही वह सब कुछ करता है परन्तु न्यायानुसार जैसे जिसके आचरण होते हैं वैसे ही वह कार्य करता है इसी लिये श्रुतियों में सदाचार और सात्विक कर्म करने की मीमांसा की है और मिथ्या कारी को मिथ्या वादी, साधु को सत्यवादी असाधु को पापी आदि कहा है और उन्हें उनके कर्मों के अनुसार ही स्वर्ग नरक आदि भुगाने की व्यवस्था की है मतलब यह कि कर्म ही को प्रधान माना है।

'कर्म प्रधान विश्व रचि राखा।
जो जस करे सोतस फल चाखा ॥'

परन्तु जो कर्म लोभ और लालच के वश हो कर किये जाते हैं वे बन्धनों के कारण होते हैं और जो कर्म लोभ और लालच रहित हो कर किये जाते हैं उनका कोई फल नहीं होता। ऐसे ही कर्मों को निष्काम कर्म कहते हैं:-

इच्छा फल मैं बांध मर पड़ते बन्धन आन।
योगी तज के कर्म फल पावत शान्त महान ॥

लोभी और लालची मनुष्य ही अपने कर्मों की सहायता से मृत्यु को प्राप्त होते हैं और उन्हीं की पूर्ति करने के लिये पुनः जन्म धारण करते हैं और जब तक उनके लोभ और लालच का अन्त नहीं होता तब तक वे इसी आवागमन के चक्र में फसे रहते हैं। लोभ और लालच अन्तःकरण के धर्म हैं। उन्हीं से सार बनता है। जीवात्मा का उनसे कोई सम्बन्ध नहीं है। वह तो संपूर्ण वृत्तियों का दृष्टा है। तप करने से भी लोभ और लालच अन्तःकरण से दूर नहीं होते। कहा भी है:-

'काया मेरे अरु तन मरे, मर मर जात शरीर।
माया तृष्णा न मरे, कह गये दास कबीर ॥'

इसलिये जो लोग लोभ और लालच के अन्तःकरण में रहते हुए ही यह जान लेते हैं कि लोभ और लालच आत्मा के धर्म नहीं हैं वे ही निर्लोभी कहलाते हैं। निर्लोभी ही निष्काम होता है। उसी को आत्म काम कहते हैं। वही जीवन मुक्त हैं। आत्मज्ञान के कारण ही ज्ञानी पुरुषों के किये हुए शारीरिक इन्द्रिय और प्राण सम्बन्धी कार्यों की गणना कार्यों में नहीं होती। उनके संपूर्ण कार्य स्वप्नवत् असत्य और अनात्म होते हैं और चित्रपट के समान जिनमें आकृतियां तो होती हैं परन्तु जीव और गुण नहीं होते केवल देखने भर ही के होते हैं। इसलिये ज्ञानी पुरुष कार्यों के कर्त्ता नहीं होते। भिक्षुक होते हुये भी स्वामी अथवा सम्राट कहलाते हैं। कौड़ी पास न होने पर भी सम्पत्तिवान् समझे जाते हैं क्योंकि उनको लोभ और लालच नहीं होती जो कि संपूर्ण दुःखों की जड़ है।

जिस प्रकार जीवात्मा जाग्रत अवस्था के शरीर में रह कर स्वप्नावस्था के शरीरों के साथ सम्बन्ध कर लेता है और स्वप्न के अन्त होने पर सम्बन्ध त्याग देता है उसी प्रकार मृत्यु के समय जीवात्मा वर्तमान शरीर में रहते ही भावी शरीर के साथ संबन्ध जोड़ लेता है यहां तक कि स्वयं अपना शरीर निर्माण करता है। परन्तु उसमें बड़ी विलक्षणता है। और वह यह है:-

मृत्यु के समय जीवात्मा की दो अवस्थाएँ होती हैं (१) उत्क्रांति अर्थात् भावना या संकल्प और (२) 'गति'। प्रथम अर्थात् 'उत्क्रांति' अवस्था में जीवात्मा वर्तमान शरीर में बैठे २ ही भावी शरीर के साथ संबन्ध रखलेता है। और द्वितीय अर्थात् 'गति' अवस्था में वह वर्तमान शरीर त्याग कर स्थान परिवर्तन करता है और भावी शरीर में प्रवेश हो कर जीवन लाभ करता और संसारी कहलाता है। या यों समझिये जब मनुष्य जीर्ण-शीर्ण हो कर अशक्त हो जाता है और ऊंचे २ श्वास भरने लगता है उस समय ज्ञानेन्द्रियां और कर्मेन्द्रियां अपना २ काम छोड़ कर प्राणों के पास इकट्ठी हो जाती हैं। फल यह होता है कि मनुष्य को आंखों से कुछ दिखाई नहीं देता, कानों से सुनाई नहीं पड़ता वह बेसुध हो कर मूर्छित हो जाता है। परन्तु भीतर वह सचेत रहता है और बुद्धि तथा मन रूपी मुसाहबों से सलाह मश्वरा करके अपनी अगली पिछली करतूतों पर विचार करता है। अन्त में उनमें से किसी एक को जो प्रबल होती है पसन्द करके उसी योनि में जाने की भावना करता है यह भावना उदान रूपी प्राण पर सवार हो कर सूर्य की किरणों के समान भावी स्थान पर पहुंच जाती है और वहां की आधिदैविक इन्द्रियों के साथ मिल कर जीवात्मा के भोग के लिये शरीर निर्माण तथा अन्य साधनों को एकत्र करने का कार्य आरंभ कर देती है और नियत समय के भीतर उसकी पूर्ति करके जीवात्मा के स्वागमन की प्रतीक्षा करती है। यहां नियत समय निकट आया जान जीवात्मा भी अपनी अगली पिछली करतूतों और विचारों तथा आंख, नाक, कान, रसना, मन, बुद्धि आदि साधनों को उदान नाम के प्राण रूपी छकड़े पर लाद कर और स्वयं उस पर सवार हो कर चल देता है। यात्रियों के छकड़ों के समान जो सूर्य और चन्द्रमा के प्रकाश में चलते हैं। प्राणों का यह छकड़ा भी जीवात्मा के प्रकाश में चलता है। इस छकड़े के जीवात्मा के प्रकाश में चलने के कारण ही जीवात्मा में जन्म-मरण और पुण्य-पाप आदि भासते हैं। वरना जीवात्मा न कहीं जाता है न आता है वह तो केवल छकड़े की चाल के कारण चलता हुआ सा मालूम होता है।

'बादल भ्रमहिं, न भ्रमहिं महादी।
तर्कहिं परस्पर मिथ्या वादी॥

× × ×

नौका रुढ़ चलत जग देखा,
अचल मोह वश आपुहि टेखा॥'

प्राणों का यह छकड़ा नियत समय पर भावी स्थान पर पहुंच जाता है और मुसाहिब लोग उतर कर अपने २ काम में लग जाते हैं। जीवात्मा भी अपने नये शरीर में प्रवेश करके जीवन लाभ करता है और असंग होते हुये भी संसारी कहलाता है। इस प्रकार वह बार २ जन्मता और मरता है। इसी जन्मने और मरने को आवागवन कहते हैं। आवागवन जीवन का होना है। जीवन ही आत्मा के आधार पर अपने प्रकाश के हेतु अनेक रंग बदलता है और नाना रूप से दिखाई देता है। जीवन का यह रंग बदलना ही आवागवन है।

भक्ति के प्रिय पाठको! इस आवागवन से पिंड छुड़ाने का केवल एक उपाय है और वह कवि-सम्राट् चतुरसिंह जी के शब्दों में इस प्रकार है।

आवागवन मिटान को, नाम नेह रस चाख।
लाख जतन कर राख तन, अन्त होयगो राख॥
नरतन काची घार ज्यों, गलत न लागे बार।
क्यों नरतन को पाय कर, कहत न 'राम' संभार।
अरुझ्यो द्वार अगार में, भज्यो न नन्दकुमार।
अन्त समय पछताय है, अन्त समय की बार॥
घड़ी घड़ी निरखो घड़ी, रही काम की चाह।
वही घड़ी तो वो घड़ी, सुधि आवै कि नांह॥

चाहे कोटि कलाम की, मुखपै कीजे बात।
आवत सुख की जाम की, [सदा जानकी नाथ॥
कीनो का करिबो कहा, करें कहा सो ढूंढ॥
भूले भूले मत फिरें मरिबो मरवो न मूढ़।

बस इसी में हमारा आपका कल्यान है।

अब बोलिये! भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र आनन्द कन्द वृन्दावन बिहारी की जय! जय!! जय!!!

भक्त और भगवान्

(रचयिता श्री जगन्नाथ मिश्र गौड़ 'कमल' विद्यालंकार)

सुनता हूँ तू न रीझता है बिना भक्ति नाथ, किंतु भक्ति भी तो तेरी करुणा का नाम है।
तेरा निवास जिस मानस में रहता सदा, वही विश्व-बीच एक सत्य-भक्ति-धाम है॥
तेरी ही माला जपे, तुझको बिसारे नहीं, तेरे भरोसा पर जो रहता आठों याम है।
उसको कमी है किसी वस्तु की न भूमि पर, चारों ओर उसके आराम ही आराम है॥

२

चाहता हूँ नाथ, मिले मुझकोकरुणा तेरी, तू न रहे दूर अब मेरे भी पास हो।
भूलवश भ्रमता फिरा हूँ मैं जहां-तहां, अब तो यही है चाह तेरा मन दास हो॥
तेरे ही नाम से हो रोम-रोम मेरा भरा, तेरा गुण यश गाऊं ध्वनित आकाश हो।
तेरी करुणा के एक कोने में वास करूं, जीवित रहूं तो भी वा जीवन-विनाश हो॥

३

पूर्ति होगी तेरी ही करुणा से मेरी चाह की, करुणा मिलेगी तेरी आह की पुकार से।
मन की मलीनता धोकर करूंगा स्वच्छ, युगल नयन से बहे अश्रु-प्रेम-धार से॥
ढोते ढोते हार गया ढोते अब बनता नहीं, जीवन थका है हाय पापों के भार से।
मिलना है इष्ट भूलकर वासनाएं सभी, तुझसे अब मेरे नाथ-जगदाधार से॥

४

चाहता हूँ भक्त बनूं तुझको पुकारता हूं, करदे करुणा की कोर मन में कुछ मान हो।
खोजता हूं मैं प्रकाश तिमिर-ग्रस्त जगती में, छिटकादे ज्ञान-किरण मानस में ज्ञान हो॥
तुझको ही सहाय अब मैं ने हित मान लिया, अधम असहाय जान मुझपर भी ध्यान हो।
समझूंगा भक्त भगवान् का है नाता कैसा, अब यह अनुभव मेरा भगवान् दान हो॥

निर्णय

[ले० श्री जगदम्बाल डालमिया]

महात्माओं की प्रत्यक्ष कृपाओं को मनुष्य अपनी परिमित बुद्धि की कसौटी पर कस कर उसके अच्छे बुरे का निर्णय कर उस पर टीका टिप्पणी किया करता है। साधारण सांसारिक वस्तु के निर्णय करने के लिए भी उसके सूक्ष्म ज्ञान की आवश्यकता होती है। पाठशालाओं में विद्यार्थियों की किसी विषय की परीक्षा लेने वाले को उस विषय का उनसे कहीं अधिक ज्ञान प्राप्त करना पड़ता है तब कहीं वह उस विषय की परीक्षा लेने के योग्य होता है। फिर भला, संसार से विरक्त महात्माओं के आचरणों की परीक्षा लेने के लिए अपनी संसारासक्त राजसी बुद्धि का उपयोग कर मनुष्य किस प्रकार सफलता प्राप्त कर सकता है? महात्माओं की परीक्षा वही व्यक्ति ले सकता है जो उनसे ऊंची स्थिति को पहुंच गया है। समान स्थिति वाला भी परीक्षक होने योग्य नहीं हो सकता फिर निम्न स्थिति वाले की तो बात ही क्या है? वास्तव में महात्माओं के अच्छे बुरे का निर्णय करना तो दूर रहा, हमारी परिमित बुद्धि संसारी बातों का भी यथार्थ निर्णय करने में असमर्थ है। यह सदा ध्यान में रखना चाहिए कि सत्य सदा एकसा रहता है, उसे त्रिकाल में भी कभी कोई नहीं बदल सकता। मनुष्य अपने विषय में आलोचना करने वाले की बुद्धि को भ्रम में माना करता है परन्तु ऐसा बहुधा देखने में आता है कि अपने जिस निर्णय को आज हम अन्तिम निर्णय मान कर उसका पक्ष स्थिर करने के लिए विरोधी मत वालों से लड़ झगड़ कर उसकी जड़ उखाड़ फेंकना चाहते हैं उसी निर्णय को कल स्वयं बदल देते हैं। इस प्रकार के अनेक उदाहरण बड़े बड़े विद्वानों में देखने में आवेंगे। ऐसा अस्थिर निर्णय करने वाली बुद्धि का अभिमान कर दूसरों को तुच्छ समझना बड़ी भूल है। जब संसारी विषय के लिए हमारा यह हाल है उस अवस्था में संसार के माया जाल से परे पहुंचे हुए महात्माओं के विषय में अपनी अल्पज्ञ बुद्धि के आधार पर तत्काल निर्णय दे देना कितना अपराध है? पाठकों के सन्मुख इस विषय की एक सच्ची घटना का बयान किया जाता है जिससे वे स्वयं समझ जायंगे कि अपनी तुच्छ बुद्धि का निर्णय मान कर अभिमान करने वाले को यदि वह वास्तविक रहस्य जान जांय तो कितना लज्जित होना पड़े।

किसी व्यक्ति ने एक गंगातीर निवासी महात्मा के निकट रह कर कुछ दिनों के लिए उनके सत्संग का सौभाग्य प्राप्त किया था। सब पर सम दृष्टि महात्माओं का स्वभाव होता है। यही कारण है कि महात्माओं के पास जाने वाला प्रत्येक व्यक्ति यह समझता है कि इनकी मुझ पर

सब से अधिक कृत दृष्टि है। कुछ समय के सत्संग के उपरान्त वह व्यक्ति अपने स्थान पर जाकर व्यवहार में लगगया। बीच बीचमें महात्मा जी का स्मरण कर कभी पत्र द्वारा अपनी शंका समाधान कर लिया करता। घरमें सब प्रकार संपन्न था अतः एक समय उसने भक्ति सहित कुछ सुन्दर पक्के फल जो कुछ दिनो ठहर सकें महात्मा जी की सेवा में वहां रहने वाले किसी परिचित व्यक्ति की मारफत रेल पारसल द्वारा भेजे। वह पुरुष बड़े प्रेम से उन फलों को लेकर संत के चरणों में पहुंचा और सारा हाल निवेदन कर सुनाया। इस पर उन विरक्त सन्यासी ने स्वाभाविक मुस्कराहट के साथ उन फलों को ज्यों का त्यों लौटादिया। यह समाचार जब भेजने वाले व्यक्ति के पहुंचा तब उसने समझा कि मुझपर महात्मा जी नाराज होगये और उसे बड़ा क्षोभ हुवा कि ऐसा मुझसे कौनसा अपराध हुवा जो मेरी सेवा स्वीकार न हुई। उस विचारे ने तो अपने ही अपराध का अनुमान संत में क्रोधकी मिथ्या कल्पना की लेकिन ऐसे व्यक्ति भी मिलेंगे जो इतने पर ही यह निर्णय कर बैठें कि कैसा महात्मा है. मैंने तो इतनी दूर से इतना खरच कर प्रेम-पूर्वक भेंट भेजी और उसने स्वीकार ही नहीं की। अस्तु इस पर उस भेजने वाले व्यक्ति ने अपना अपराध क्षमा कराने के आशयका एक जवाबी पत्र भेजा। जवाबी पत्र भेजने का कारण यह था कि वे अपने पास लिफाफे पोस्टकार्डों का संग्रह नहीं रखते थे एवं न किसीसे याचना ही करते। इसके उत्तर में संत का इस आशय का स्वाभाविक उत्तर आया कि कौन किसका अपराध करे और कौन क्षमा करे। यद्यपि बात यथार्थ है लेकिन इससे उस भावुक का हृदय और भी कांपने लगा और उसने पुनः संतसे दीनता पूर्वक क्षमा याचना की इसके उत्तर में संत का निम्न लिखत पत्र आया:-

श्रीयुत भावुक जी!

नारायण!

आपका पत्र ता० २१-६-३२ का मिला। पढ़कर चित्त प्रसन्न हुआ।

सेवा तो की किंतु विचार सहित नहीं की, इसलिये स्वीकार न हुई और न हो सकी है। जैसा देव वैसा सेव, यह वृद्ध पुरुषों का वचन है। मेवा मिठाई की सेवा तो सेठ साहूकारों की की जाती है, क्योंकि वे उस सेवा के योग्य हैं, भिक्षुकों की सेवा तो दो रोटियों से होती है। यह ही उनकी औकात है, मिठाई मेवा की उनकी औकात नहीं है, फिर भी भिक्षा के समय हो जाय, तो भावुक की इच्छानुसार हो भी जाय, इतनी दूर से ऐसी सेवा होनी योग्य नहीं है, क्योंकि उसका फल कुछ नहीं है अथवा कुछ है, तो विपरीत है। अपना खर्च किया औरों को कष्ट दिया, हमारे लिये विक्षेप किया, तीन दिन तक रखवाली करनी पड़ती, फिर किसको न दें, दें भी तो कितने दें ऐसी झंझट में पड़ना ठीक न समझ कर लौटा दिये। स्वीकार करलेते तो आगे फिर ऐसा ही होता, ऐसी सेवा के हम योग्य नहीं हैं और आपको करनी भी नहीं चाहिये, अपना खर्च करना, दूसरे को विक्षेप में डालना सेवा नहीं है। अधिक लिखने की आवश्यकता नहीं है, आप समझदार हैं, ऐसी सेवा का विचार भी न करें, अप्रसन्नता का कोई कारण नहीं है आपका कल्याण हो। इतिशम्!

महात्मा फजल अयाज

फजल आज एक महामान्य ऋषि थे। पहिले वह लुटेरों के सरदार थे, परन्तु उनके जीवन की दशा आश्चर्य जनक रीति से बदल गई थी। तत्व ज्ञान और विवेक-वैराग्य में वह सर्व शिरोमणि महात्मा बनगये थे। उनके जीवन की पहिली अवस्था इस प्रकार थी:-

फजल अयाज जंगल में तम्बु डालकर रहा करते थे। शरीर पर कफनी और हाथ में माला धारण करके साधु का वेश में रहते थे और काम लुटेरों का करते थे। उनके सैकड़ों डाकू साथी थे वह सब फजल की आधीनता में लूट मारका काम करते थे और जो कुछ लूटकर लाते वह सब फजल के सामने रखदेते थे। फजल जितना चाहता अपने लिये रखकर बाकी का माल उन लुटेरों को बाट देते थे। इस प्रकार का निपिद्ध काम करते हुये भी वह शुक्रवार की नमाज को कभी नहीं भूलते नियम से आप पढते थे तथा अपने साथी लुटेरों को भी पढने को कहा करते थे और जो कोई शुक्रवार की नमाज में शामिल नहीं होता था उसे अपनी मंडली से निकाल देते थे।

फजल के स्वभाव में पहिले ही से महत्ता तथा पुरुषार्थ विद्यमान था। वह परदेश को जाते हुये व्योपारियों के काफिलों को लुटते तो अवश्य थे परन्तु इन काफिलों में जो स्त्रियां होती थीं उनकी ओर दृष्टिपात भी नहीं करते थे। और जिस मनुष्य के पास थोड़ी सी पूंजी देखते थे उसे छोड़ देते थे और जिनको लूटते थे उनको भी वह अपने घर पहुंच जाय इतने दिनका राह खर्च वापिस दे देते थे। वह एक युवती पर बहुत आसक्त थे और लूट खसोट से जो धन प्राप्त करते वह उस अपनी प्रियतमा को भेजदेते थे।

एक बार एक व्योपारी का कफिला उसके तंबू के पास से जारहा था। लुटेरों ने उसे लूटने के लिये अपने साथियों को एकत्रित होने के लिये पहिले से ही नीयत शब्दों में आवाज दी। लुटेरे आकर लूटें इससे पहिले ही अपने रुपयों को किसी स्थान पर छिपा देने की इस काफिले के एक व्योपारी की इच्छा हुई इधर उधर देखा तो उसे एक तंबू दिखाई दिया। और इस तंबू में उसे एक फकीर माला फेरता दृष्टि गोचर हुवा। यह कोई तपस्वी महात्मा हैं, और वह प्रभु का नाम जप रहे हैं, ऐसे त्यागी पुरुष को अपना धन रक्षा के अर्थ देना, यही हितकारक है। ऐसा विचार करके वह तम्बू में गया और अपनी हालत बता कर कोष की थैली रक्षार्थ स्वीकार करने की प्रार्थना की। फजल ने यह कोथली तम्बू के एक भाग में रखने का इशारा किया। बताये हुये स्थान पर कोथली डाल कर व्योपारी अपने काफिले में चला गया। इतने में ही उस काफिले पर लुटेरे टूट पड़े और जिसके पास जो कुछ था सब का सब लूट लिया। लुटेरों के चले जाने के पश्चात् यह व्योपारी कुछ समय व्यतीत होने पर तम्बू में अपना रखा हुवा धन

वापिस लेने के लिये आया। वहां क्या देखता है कि सारे के सारे डाकू वहीं एकत्रित हो रहे हैं। और काफिले का जो धन लूट कर लाये थे उसको बांट रहे हैं। यह देख कर व्योपारी के हृदय में धक्कासा लगा। उसने समझ लिया कि मैंने तो अपने हाथ से ही लुटेरों के सरदार के हाथ में धन अर्पण किया है। इसलिये अब उससे कुछ कहना निष्फल है। ऐसा विचार कर वह तम्बू से चुप चाप वापिस जाने के लिये तय्यार हो गया। परन्तु इतने में ही फजल ने उसे देखा और देखते ही उसे अपने पास बुलाया। कांपता २ वह व्योपारी तम्बू में घुसा। फजल ने पूछा "किस तरह आया है?" उसने कहा आया तो अपना धन वापिस लेने था, परन्तु मेरी भूल हुई। अब वापिस जाता हूं। फजल ने कहा कि "तू ने जहां तेरी कोथली रखी है वहां से उठाले"।

कोथली लेकर राजी होता हुवा व्योपारी अपने काफिले में आ गया। फजल के साथियों ने कहा कि इस काफिले के लूटने से कुछ सन्तोष कारक धन नहीं मिला है इसलिये यह रुपया आप क्यों वापिस कर रहे हैं?

फजल इस आदमी ने मुझे साधु समझ कर मेरा विश्वास किया था, और इस विश्वास का नाश न हो इसलिये मैंने इसका धन वापिस कर दिया। ईश्वर सदा मेरा ऐसा विवश भाव बनाये रक्खे यह मेरी प्रबल इच्छा है।

यह बनाव बने पीछे कुछ दिनों बाद लुटेरे एक और काफले को लूटने लगे उस काफिले के एक व्योपारी ने लुटेरों से पूछा कि क्या तुम्हारा कोई सरदार नहीं है?

लुटेरों ने कहा-हां, है, नदी के किनारे तम्बू में नमाज पढ़ रहा है।

व्योपारी-"यह तो नमाज का समय नहीं"।

लुटेरे-वह निवाज से भी अधिक नमाज पढ़ा करते हैं।

व्योपारी-वह भोजन किस समय करते हैं?

लुटेरे-आज कल रोजे हैं इसलिये दिन में नहीं जीमते।

व्योपारी-रोजे तो रमजान मास में रक्खे जाते हैं। आज कल नहीं।

लुटेरे-वह रमजान के अतिरिक्त भी रोजे रखा करते हैं।

यह बात सुन कर व्योपारी बहुत आश्चर्य्य युक्त हुवा। और वह फौरन ही फजल के पास आया और कहा कि आप नमाज तथा रोजों के साथ २ यह लूट मार किस प्रकार निभा रहे हैं।

फजल-तूने कुरान पढा है?

व्योपारी-हां पढ़ा है।

फजल-"लोग सत्कर्म करने के साथ २ पापाचरण भी किया करते हैं" यह वचन तूने पढा है।

व्योपारी-यह सुन कर आश्चर्य्यान्वित होगया।

एक वार एक सौदागर का काफिला रात्रि के समय उस रास्ते से जा रहा था। फजल ने अपने मनुष्यों के साथ उस पर धावा किया। इतने में एक सौदागर ने कुरान का यह वचन उच्चार्ण किया "तुम्हारा सोया हुवा मन जाग्रित हो इतनी योग्यता अभी तक तुम्हारे में क्यों नहीं आई है।

फजल के हृदय में कुरान का यह वचन तीर

की तरह लगा। मानों इस वचन ने फजल के ऊपर आक्रमण करके उसे सचेत किया हो कि "अरे मूढ़। अभी तू और कितने वर्षों तक इस प्रकार लूट फांस करता रहेगा? क्या अभी तेरे जागने और जीवन की दशा बदलने का समय नहीं आया?

फजल अतिनाद करके पुकार उठा-हो समय आगया है। वह बहुत व्याकुल तथा शरमिंदा हो गया और जंगल की ओर भागने लगा। इतने में व्योपारियों का दूसरा काफला वहां से होकर जाने लगा। वह आपस में बात कर रहे थे कि इस स्थल में फजल नामक भयंकर डाकू रहता है इसलिये इस रास्ते जाना नहीं चाहिये। इस बात चीत को सुनकर फजल बोला "भाइयो! मैं तुमको एक शुभ समाचार सुनाता हूं। कि फजल अब लूटना छोड़ कर पश्चात्ताप कर रहा है। खुदा की मेहरबानी से अब उसकी जीवन दशा बदल गई है। अब वह तुम्हारे पास से भाग रहा है। इतना कह कर वह रोता रोता वहां से चला गया। रास्ते में उसे एक मनुष्य मिला उससे फजल ने कहा कि "मैं तुझे खुदा की सौगंध देकर कहता हूं कि तू मुझे बादशाह के पास लेजा। वह मेरे ऊपर बहुत गुस्से हो रहा है। मुझे पाकर उसे बड़ी शान्ति होगी। मैं अब उसके पास से सजा चाहता

इस प्रकार का आग्रह देख कर वह मनुष्य उसे बादशाह के पास ले गया। बादशाह ने फजल से बात चीत करने पर जान लिया कि इसकी जीवन दशा बदल गई है। अब पवित्र जीवन व्यतीत करने के लिये फजल सजा मांग रहा है। यह समझ कर बादशाह ने उसे आदर पूर्वक घर जाने की आज्ञा दे दी। घर के आंगन में आकर उसने अपने पुत्र को आवाज दी। उसकी आवाज सुन कर सब घर के आदमी चकित हो गये और आपस में कहने लगे कि "यह क्या है" इस की आवाज कैसे बदल गई? अवश्य ही इसे सख्त चोट लगी है!

फजल ने कहा-हां, मुझे सख्त चोट लगी है।

पुत्र-कहां?

फजल-मेरे कलेजे में।

तब फजल घर में गये और अपनी स्त्री से कहा कि "कल ही मेरा मक्का जाने का विचार है, तुम्हारी क्या राय है।

स्त्री मैं तुमसे जुदा नहीं रहना चाहती। जहां तुम जाओगे वहीं मैं भी तुम्हारे साथ रह कर तुम्हारी सेवा करूंगी।

तब फजल अपनी स्त्री के साथ मक्का गये ईश्वर ने उनको सहज ही में सन्मार्ग में लगा दिया। वह मक्का में रहने लगे। वहां उन्होंने अनेक सन्त महात्माओं के दर्शन किये। धर्माधर्म "अबुहानिफ" के सहवास में वह बहुत दिन तक रहे। तथा ज्ञान प्राप्ति तथा साधना करी। फिर उन्होंने उपदेशक का काम शुरू किया। मक्कावासी सैंकड़ों लोग उनके उपदेश सुनने आते कितनेक वर्षों के बाद उसके पहिले साथी लुटेरे उससे मिलने के लिये आये। परन्तु उसने उनमें से किसी को भी अपने पास आने नहीं दिया। परन्तु वह लोग वहां से नहीं हटे तब फजल ने मकान की छत पर से चढ़ कर उन्हें सम्बोधन करके कहा कि अरे धर्म्म विमुख लोगों ईश्वर तुम्हें भी सद्बुद्धि दे और अपने काम में लगावें।

यह सुन कर वह पुराने साथी लुटेरे निराश होगये और अब फजल नहीं मिलेंगे यह समझ

कर वह सब खुरासान की तरफ चले गये। ऊंट पर चढ़े २ फजल उनके लिये बहुत समय तक रोते रहे।

खलीफा हारूं अल रसीद ने एक रात्रि को अपने एक मित्र से कहा कि आज रात्रिको तू मुझे किसी ऐसे मनुष्य के पास ले चल कि जिससे मेरे अन्तःकरण को शान्ति मिले। यहां तो मैं संसार के कोलाहल से बहुत ही अकुला गया हूं।

उस मित्र ने खलीफा को सूफियान के दरवाजे के आगे ला खड़ा किया।

सूफीयान हारूं हामिल ने पूछा कौन है? देशाधिपति "हारूं अल रशीद"।

सूफी-मेरे अहो धन्य भाग कि इनके चरण कमल मेरे घर में फिरे। तुमने यह बात मुझे पहिले ही क्यों न कही मैं स्वयम् ही इनके पास हाजिर होता।

यह उत्तर सुन कर हारूं रशीद ने कहा "मित्र! मैं जिससे मिलना चाहता हूं वह यह आदमी नहीं है।

यह सुन कर सूफीयान ने कहा कि मैं समझता हूं कि जिससे आप मिलना चाहते हैं वह फजल अयाज है।

फिर वह वहां से फजल के घर गये। फजल उस समय कुरान के यह वचन पढ रहे थे कि दुराचारी लोग भी यह समझते हैं कि मैं उन्हें धार्मिक लोगों में गिनूंगा।

हारूं यह सुन कर बोले कि-"अहो! मुझे यदि उपदेश की आवश्यकता हो तो यह वचन ही बहुत हैं।"

फिर उन्होंने दरवाजा खटखटाया।

फजल-आप कौन हैं?

हारूं का मित्र-"खलीफा हारूं आरूं अल रशीद"

फजल-मुझ से उसे क्या काम है? और मुझे उससे क्या काम है? मुझे अपने काम से हटाकर और तरफ मत खींचो।

हारूं का साथी-देश के राजा का तो आप को सनमान करना ही चाहिये।

फजल-मेरे काम में खलल मत डालो।

फिर उन्होंने झोंपड़ी में आने देने की आज्ञा के लिये प्रार्थना की। फजल ने आने की आज्ञा तो दी परन्तु हारूं अल रशीद का मुख दीख न पड़े इसलिये दीवा बुझा दिया। हारूं अलरशीद ने अन्धेरे ही में फजल के साथ हाथ मिलाया। हाथ के छूते ही फजल ने कहा कि आहा! कितना कोमल हाथ, इस हाथ का नरक की अग्नि से छूटना योग्य है।

इतना कह कर वह नमाज पढ़ने के लिये खड़े हुये।

हारूं अलरशीद रोने लगे और कहा कि-"कुछ और भी कहो"

नमाज पूरी करके फजल ने कहा कि तुम्हारे पिता हजरत महुम्मद साहिब के काका लगते थे। उन्होंने हजरत से खलीफ का पद अपने लिये मांगा। तब पैगम्बर साहब ने कहा था कि "पूज्य काका जी? खलीफा बन कर हजार वर्ष तक लोक सेवा करने के बदले आप अपना जीवन ईश्वर की सेवा में व्यतीत करें यह आपके लिये सबसे अच्छा है। मैं तुम्हें देश का राज्य न देकर तुम्हारे मनका राज्य अर्पण करता हूं।

फजल के इतना कह कर चुप रहने पर हारूं ने फिर कहा "और भी कुछ कहो"।

फजल-उमर अबदुल अजीज जिस समय खलीफा की गद्दी पर बैठा उस समय उसने अन्दुआ

के पुत्र सालम को, इयूत के पुत्र रोज़ को, काबेर के पुत्र अहमद को अपने पास बुलाया और कहा कि "मैं आज खिलाफ़त की गद्दी पर बैठता हूं मेरा क्या कर्तव्य है मुझे बताओ"।

उन में से एक जने ने कहा कि तुम परलोक की सज़ा से मुक्त होना चाहते हो तो वृद्ध पुरुषों को पिता के समान, बालकों को सन्तान के समान और स्त्रियों को माता तथा बहन के समान देखो। और इसी भावना से उनके साथ व्योहार करो। यह सब मुसलमानों के देश तुम्हारा बहुत बड़ा विशाल घर है। और प्रजा मंडल यह तुम्हारा विशाल परिवार है। बड़ों से नम्रता हो भ्रातृ मंडल की तरफ दया पूर्ण आचरण रखो और बालकों के कल्याण के उपाय सोचो। मुझे यही सोच होता है कि ऐसा न हो कि कहीं तुम्हारा यह सुन्दर मुख कमल की अग्नि से जल कर कुरूप न हो जाय।

यह सुनकर खलीफ़ हारूं अलर आदि रोने लग गये। फिर फजल बोले कि ईश्वर का भय रखो, सदा चैतन्यता के साथ रहो, न्याय के दिन प्रभु प्रत्येक से उसके पुण्य पाप का हिसाब पूछेंगे। और न्याय करेंगे। आज यदि तुम्हारे राज्य में यदि कोई साधारण बुढ़या भी अन्न बिना क्लेश पाती होगी और भूख के कारण उसे रात्रि में नींद नहीं आती होगी तो वह भी तुम्हारे ऊपर ईश्वर के दरबार में फरयाद करेगी।

यह सुनते ही हारूं का रोना काबू से बाहर होगया। वह ऊंचे स्वर से रोने लग गये। यह देखकर उनके साथी ने फजल से कहा कि "फजल! तुमने खलीफा को मृत प्रायः कर दिया!"

फजल-'हे हमान! तुम चुप रहो।' तुम्हारी मंडली ने ही इनका वध किया है, मैंने नहीं किया। हारूं इससे और भी ज़ोरसे रोने लगे, और अपने साथी से कहा 'यह तुझे हमान जैसा और मुझे फ़रून जैसा मानता है। फिर हारूं ने फजल से पूछा कि 'आपको किसी का कुछ देना है?

फजल-हां, मैं प्रभु का बड़ा करज़दार हूं। जो मुझ से उसका करज़ चुकाया न जा सके तो मेरे लिये यह बड़ी शरम की बात है।

हारूं अलरशीद-यह तो सत्य है, परन्तु मैं तो यह पूछता हूं कि लोगों का आपको कुछ देना है।

फजल-प्रभु का अपार धन्यवाद है कि ईश्वर रूपी अपार दौलत मुझे मिली है। इससे करज़ की बाबत तो मुझे कुछ कहने योग्य नहीं है।

तब हारूं अलरशीद ने एक हज़ार अशर्फी की थैली उसके आगे डाली और प्रार्थना की कि 'यह तथा ना मुनासिब तरीके से पैदा किया हुआ नहीं है, मेरे माता पिता की सम्पति में से प्राप्त हुआ है, इसलिये आप इसे स्वीकार करने की कृपा करें।

फजल अत्यन्त नाराज़ हो कर बोले कि "मेरे इस उपदेश से तुझे कुछ भी फल मिला है यह मुझे दिखाई नहीं देता। मैं देखता हूं कि अब भी तू अविचार और अत्याचार करने में लगा हुआ है। मैं तेरा भार हलका करना चाहता हूं। तब तू तो उलटा मेरे ऊपर ही भारी बोझ डाल कर मुझे ही नरक में डालने की चेष्टा कर रहा है। मैं कहता हूं कि तेरा जो कुछ है वह सब तू प्रभुको देदे, परन्तु ऐसा न करके तू तो जिसे देना योग्य नहीं उसे ही देना चाहता है। अरे रे, मेरे उपदेश से तुझे ज़रा भी लाभ नहीं हुआ। ऐसा कह कर फजल एक दम खड़े हो गये और अपने मकान का

दरवाजा बन्द कर लेने को उनका भाव समझ कर बादशाह तुरन्त ही बाहर निकल आये। और फजल ने द्वार बन्द कर लिया। बाहर आकर हारूं अलरशीद बोले-"हां यह सचमुच सच्चे उन्नत आत्मा महात्मा हैं।

एक बार फजल अपने पुत्र को गोद में लेकर प्रेम भाव से चुम्बन कर रहे थे, उस समय उस बालक ने पूछा कि "क्या पिता जी तुम मुझे चाहते हो।"

फजल-हां, चाहता हूं।

पुत्र-तुम ईश्वर को भी चाहते हो?

फजल-हां,

पुत्र-हृदय तो मनुष्य के एक ही होता है; फिर एक हृदय में क्या दो वस्तु रह सकती हैं। फजल ने समझा कि-"छोटे बच्चे के मुख से निकली हुई दिव्य बात ईश्वर प्रेरणा से ही बोली गई है।" तुरन्त ही उन्होंने पुत्र को गोदी में से दूर कर दिया और ईश्वर के भजन में लग गये। सूफिया ने कहा है कि "फजल के साथ रह कर एक बार हमने सारी रात्रि भर बातें कीं। शास्त्र चर्चा में इस प्रकार सारी रात व्यतीत करके सवेरे जाते समय मैंने कहा कि-"आज की रात्रि को मैं बहुत ही आनन्द और सुख की रात्रि मानता हूं। आहा मुझे कैसा सुखदायक सहवास मिला है।

फजल-नहीं, नहीं ऐसा मत कहो! आज की रात्रि बहुत अशुभ रात्रि थी।

सूफियान-ऐसा किस लिये कहते हो?

फजल-कारण यह है कि, तुम सारी रात मुझे वाणी विलास से ही खुश कर कर सन्तुष्ट कर देने की कोशिश में थे, और मैं तुमको अच्छा उत्तर देकर किस प्रकार खुश करूं इस कोशिश में पड़ा हुवा था। इससे हम दोनों इस प्रकार का प्रयत्न करते रहने के कारण प्रभु को तो भूल ही गये थे। इस प्रकार केवल मनुष्य को ही संतुष्ट करने के लिये समागम करने, अथवा शास्त्र चर्चा करने से तो संग रहित होकर और निर्जन स्थान में ईश्वर के ही साथ बातें करना, यह ही कल्याणकारी है।

एक बार एक मनुष्य फजल के पास आया। फजल ने उससे पूछा कि "तू किस लिये आया है?"

उस आदमी ने कहा कि-"तुम्हारे साथ रहना चाहता हूं।"

फजल-ऐसा होने में तो संदेह ही है। मीठे २ असत्य वचनों से मुझे ठगेगा, और उसी प्रकार मैं तुझे ठगूंगा। इसके अतिरिक तुम्हारे रहने का फल और कुछ निकले ऐसा मुझे तो दिखाई नहीं देता।"

नया धार्मिक जीवन प्राप्त होने के पश्चात् फजल निर्जन वन में रहना अधिक पसन्द करते थे। तीस वर्ष तक किसी ने उन्हें हंसते हुए नहीं देखा। परन्तु जिस दिन उनके पुत्र की मृत्यु हुई। उस दिन वह हंसे। उन्हें हंसा हुवा देख कर किसी ने उससे पूछा कि "आज तुम्हारे हंसने का क्या कारण है?"

फजल ने कहा कि 'आज मैं जान सका हूं कि प्रभु इसकी मृत्यु में ही प्रसन्न हैं; इसी से मैं भी प्रभु की प्रसन्नता के साथ अपनी प्रसन्नता मिला कर हंस रहा हूं"।

फजल कहा करते थे कि "हे प्रभु! तूने मुझे भूखा रखा है मेरे परिवार को भी अन्न वस्त्र रहित रखा है और रात्रि के लिये दीवा तक भी नहीं दिया है; परन्तु मुझे विश्वास है कि तुम, जो

तुम्हारा परम प्रीति पात्र होता है उसके साथ इस प्रकार का व्योवहार करते हो। प्रभु कहो, कहो, कि मेरे किस गुण के कारण आपने मुझे इस प्रकार की सम्पत्ति का लाभ दिया है।

आज से १२०० वर्ष पहिले फजल हो गुजरे हैं। सन्तानों में उनके केवल दो पुत्री ही बाकी रही थीं। मरते समय उन्होंने अपनी स्त्री से कहा कि मुझे कबर में दफनाने के बाद तू इन दोनों पुत्रियों को साथ लेकर किसी पर्वत के ऊपर चढ़ कर प्रभु की तरफ ऊंची दृष्टि करके इस प्रकार बोलना कि हे प्रभु! फजल के कथनानुसार मैं तुम्हारी बन कर निवेदन करती हूं कि जब तक फजल जीते रहे उन्होंने अपने आश्रितों का यथा शक्ति भरणपोषण किया। अब आपने उनको कबर रूपी कैदखाने में डाल दिया है। इसलिये अब मैं उनकी आश्रित इन लड़कियों को आपके समर्पण करती हूं।"

फलज के परलोक वासी होने के पश्चात् उनकी स्त्री ने इसी प्रकार आचरण किया। किसी पर्वत के शिखर के ऊपर जाकर उसने बहुत अधिक रुदन करके प्रार्थना की। दैवयोग से उसी समय वहां उस देश का राजा आगया। उसने इस स्त्री का रुदन विलाप और प्रार्थना सुन कर सब हाल हकीकत पूछी। फजल की स्त्री ने सारा हाल उसे सुनाया। इस पर राजा ने कहा कि "तुम्हारी इन दोनों लड़कियों का विवाह मैं मेरे दोनों पुत्रों के साथ करना चाहता हूं। कहो तुम्हारी क्या मरजी है।

फजल की स्त्री ने कहा कि-"मुझे इसमें किसी प्रकार की बाधा नहीं, भले ही ऐसा करो।" राजा ने तुरन्त ही पालकी मंगाई और उनको अपने यहां ले गया और भारी धूम धाम से अपने लड़कों का विवाह उनके साथ कर दिया। और दोनों लड़कियों को दश दश हजार मुद्रा बतोर स्त्री धन दी।

फजल के वचनामृत

(१) जो कोई मेरे पास आकर सलाम न करे तथा जब मैं रोगी होऊं तो भी मेरी सेवा न करे तो मैं उससे बहुत खुश होता हूं। क्योंकि मुझे मेरे जीवन में इससे विशेष लाभ पहुंचा है।

(२) रात होगी तब एकान्त मिलेगा यह जान कर मुझे आनन्द होता है। और दिन निकलेगा तब लोगों का गड़बड़ात बढ़ेगा यह जान कर मुझे दुख होता है। कारण कि मनुष्य आकर मुझ से बातें करें, मैं यह नहीं चाहता।

(३) जो आदमी निर्जनता से डरता है और लोगों के संग से खुश रहता है वह शान्ति को खोता है।

(४) स्वर्ग में किसी को रोता देखें तो वह जिस प्रकार आश्चर्यजनक है, इसी तरह इस संसार में कोई हंसे, यह आश्चर्य जनक है।

(५) जिसके हृदय में सदा ईश्वर का डर रहता है। जिसकी जीभ यद्वा तद्वा नहीं बोलती उसके अन्तःकरण में रही हुई प्रभुमय रूपी अग्नि उसकी संसारासक्ति को तथा विषय कामनाओं को जला कर भस्मीभूत कर देती है।

(६) जो आदमी ईश्वर का भय रख कर चलता है, उससे दुनियां भी डरकर चलती है। और जो प्रभु से डर कर नहीं चलता उससे लोग भी नहीं डरते।

(७) साधक में ईश्वर सम्बन्धी ज्ञान जितने अंश में होगा उतना ही उससे प्रभु से डर कर चलना तथा आनन्दित रहना बन सकेगा; और साधक का परलोक पर जितना स्नेह होगा उतना ही संसार पर उसका वैराग्य होगा।

(८) संसार में प्रवेश करना सहल है परन्तु निकलना कठिन है।

(९) संसार, यह बदमाशों का हस्पताल है और इसमें जो रहते हैं, वह बदमाश हैं; क्योंकि बदमाशों ही के हाथ पैर में सांकल होती है।

(१०) जो परलोक मिट्टी का और अनित्य होता तथा यह लोक सोने का होता तो भी विचार करके देखने से वह मिट्टी का स्थान भी लोगों को पसन्द आना चाहिये, तो फिर जब यह लोक मिट्टी का और परलोक स्वर्ण का है तब तो इस लोक से प्रीति रहने का कारण ही बाकी नहीं रहता।

(११) जितना दुनियावी लाभ मनुष्य को मिलेगा उससे सौ गुणा अधिक नुकसान परलोक में भोगना पड़ेगा।

(१२) यहां के सुन्दर और कीमती वस्त्र तथा स्वदिष्ट भोजन में आसक्ति रखने वाले को स्वर्ग के दिव्य भोजन और वस्त्रों से वंचित रहना पड़ेगा।

(१३) ईश्वर के हजूर में नम्र रहना, उसकी आज्ञा के अनुसार चलना और उसकी जैसी इच्छा हो उसे सिर आंखों से स्वीकार करना, इसीका नाम भक्ति है।

(१४) जो मनुष्य अपने को महान् ज्ञानी मानता है, वह भक्ति रहित है।

(१५) जो मनुष्य मनुष्यों के साथ बाहर से स्नेह भाव दिखावे और अन्दर से शत्रुता रखे उसके ऊपर ईश्वर का शाप उतरता है।

(१६) लोगों के कहने से कुछ कामों और विषयों पर स्नेह दर्शाना और उनकी बड़ाई करना यह कपटी पन है, और लोगों को राजी करने के लिये सत्कार्य करना इसका नाम दम्भ से भरी हुई मूर्ति पूजा है। इन दोनों प्रकार के कृत्यों से ईश्वर तुम्हें बचावें और तुम्हारे हृदय में शुद्ध प्रेम की जागती हो।

(१७) ईश्वर जैसा है उसी स्वरूप में उसका साक्षात्कार हो सकता है। वही मनुष्य उसका सच्चे अर्थ में उपासक है।

(१८) जो ईश्वर के अतिरिक्त दूसरे की की आशा नहीं रखता और ईश्वर के सिवाय किसी का भय नहीं रखता वह सच्चे अर्थों में ईश्वर पर निर्भर रहने वाला कहा सकता है।

(१९) वही ईश्वर का सच्चा आश्रित और दास है कि जिसने ईश्वर का मजबूती के साथ आश्रय लिया है और किसी बात में भी उसे बोदी नहीं ठहराता।

(२०) शुद्ध स्थानों में जाकर कितने ही पवित्र हो आते हैं और कितने ही अपवित्र हो कर भी लोटते हैं। तीर्थ स्थान मक्का में जाकर भी अनेक मनुष्य अशुद्ध हो कर आये हैं।

श्री राम का नाम

(रचयिता श्री लक्ष्मी प्रसाद मिस्त्री 'रमा')

इत गर्व करना है वृथा, सुत-भ्रात-तिय-धन-धाम का।
सारा प्रपंच है देखने का कोई न तब काम का ॥
"लक्ष्मी" भरोसा ना यहां, कुछ जीने का इक नाम का।
रटना भला है इसलिये, शुभ नाम ही 'श्री राम' का ॥ १ ॥
जिमि शंभु का दृग तीसरा है, दाहकारी 'काम' का।
संजीवनी सब रोग नाशन, मूल इक शुभ नाम का ॥
अरु तम हटाने दिवाकर, है 'रमा' सुख धाम का।
इमि पातकों के नाशने को, नाम है 'श्री राम' का ॥ २ ॥

सम्राट् अशोक वर्धन

(ले० मधुमङ्गल जी मिश्र बी. ए.)

भगवान् बुद्ध जीव और संसार के सम्बन्ध में बहुत विचार कर इस निर्णय पर पहुंचे कि तपस्या अथवा शरीर को क्लेश देने से कुछ लाभ नहीं। जीव कर्मानुसार फल भोगने को शरीर पाता ही रहेगा। जैसे कोई दीपक में तैल डालता जावे तो वह जलता ही रहेगा तैल न डालने से दीपक बुझ जाता है वैसे ही कर्म भोग शेष न रहने पर जीव देहान्तर प्राप्ति से छुट कारा पा जाता है। इसी बात को बौद्ध भाषा में निर्वाण प्राप्ति कहते हैं। प्रायः उसी काल के आस-पास वैशाली के लिच्छवि वंशीय कुमार वर्धमान भी ऐसी ही शिक्षा दे रहे थे। वे भी राजपद परित्याग कर देश विदेश भ्रमण करते उपदेश देते फिरते थे। अहिंसा पर वे बहुत बल देते थे। तपस्या को वे निरर्थक नहीं मानते थे। उनका कहना था कि शरीर और मन परस्पर विजय की अभिलाषा रखते हैं। शरीर अपना सुख चाहता है। बुद्धिमान मन शरीर को वश में रखना चाहता है। रोगी शरीर भोजन चाहता है। पर मन जानता है रोग में भोजन का क्या फल होगा। अतः मन अथवा विवेक शक्ति को शरीर पर प्रादुर्भाव प्राप्त करना चाहिये। उसीके अभ्यास को तपस्या कहते हैं।

उस समय के यज्ञों में बलि पशुओं का संहार देख इन महात्माओं के हृदय में दारुण पीड़ा हुई और कर्म फल का भय दिखा अहिंसा को परम उत्तेजना दी। प्रायः ४० वर्ष पर्यन्त उत्तरीय भारत, विहार में शिक्षा देते भगवान् बुद्ध निर्वाण को प्राप्त हुए और उनका प्रवर्तित धर्म चक्र शिष्य परम्परा में फैलता प्रचार पा रहा था। ३०० वर्ष पश्चात् अलक्षेन्द्र (सिकन्दर) ने भारत में प्रवेश किया। बहुत दूर देश से फारस आदि विजय करता आया था, सेना थकी थी, वर्षा ऋतु का प्रारम्भ हुआ था, नदियों में जल बढ़ रहा था। मगधराज महापद्म नन्द के प्रताप की ख्याति सुनने पर वह लौट गया। उस मगध सिंहासन पर चाणक्य की कूटनीति की सहायता से चन्द्र गुप्त मौर्य प्रतिष्ठित हुआ। उसने अलक्षेन्द्र के पश्चात् उसके पूर्वीय विजित देशों के अधिकारी सेल्यूकस को चढ़ाई करने पर पराजित किया। सेल्यूकस ने अपनी कन्या हेलेन के साथ अफगानिस्तान बलूचिस्तान आदि देश दे अपने को बचाया। यों चन्द्रगुप्त के राज्य का विस्तार मगध से अफगानिस्तान पर्यन्त उत्तरीय भारत में फैल गया।

सम्राट् चन्द्रगुप्त ने अपने विशाल साम्राज्य का राज्य प्रबन्ध बड़ी योग्यता से किया। प्रायः २४ वर्ष के शासन से परिवर्धित इस समृद्ध राज्य को उसके पुत्र बिन्दुसार ने बढ़ाया। दक्षिण की ओर नर्मदा पर्यन्त साम्राज्य की सीमा पहुंचा दी। और प्रायः २७ वर्ष तक सुप्रबन्ध रक्खा।

बिन्दुसार के समय में किसी ब्राह्मण को एक कन्या हुई। ज्योतिषियों ने भविष्यद्वाणी की, कि वह चक्रवर्ती की माता होवेगी। ब्राह्मण उस सुभद्रांगी को राजा को सौंप चलता बना। कन्या को रानियों ने नापितानी (नाइन) कह, सेवा लेना प्रारम्भ किया। वयस्थ होने पर राजा बिन्दुसार ने उसे अपनी रानी बनाया। उससे दो पुत्र हुए। उनके नाम अशोक और वीताशोक पड़े। योग्यता देख राजा बिन्दुसार ने तक्षशिला प्रान्त में राष्ट्र विप्लव के समाचार पाकर अशोक को राज्य प्रतिनिधि बनाकर भेजा। प्रजा मन्त्रि मण्डल से असंतुष्ट थी, राजवंश से नहीं। अशोक के पहुंचने पर विप्लव शान्त हुआ। उस समय तक्षशिला प्रान्त का विस्तार उन देशों पर था जिन्हें आज नैपाल काश्मीर, पंजाब, अफगानिस्तान और बलूचिस्तान कहते हैं। अशोक ने तक्षशिला की बहुत उन्नति की। तक्षशिला उस समय एक प्रसिद्ध शिक्षा केन्द्र था जहां दूर देशों से उच्च शिक्षा ग्रहण करने विद्यार्थी आते थे। वहां के विश्वविद्यालय में अत्यन्त प्रवीण शिक्षक भिन्न २ विद्याओं, कलाओं पर शिक्षा देते थे।

अशोक की विमाता से उत्पन्न एक सुसीम नामक बड़ा भाई था। खेल २ में तनिक असावधानता पर राजमन्त्री शल्लाटक सुसीम से रुष्ट हो गया। उसने सम्राट् को मिला के सुसीम को तक्षशिला भिजवाया और अशोक को उज्जैन जाना पड़ा। बिन्दुसार के रुग्ण होने पर अशोक पाटलीपुत्र आये। योग्यता के कारण मन्त्रियों की सम्मति से वे युवराज पद पर प्रतिष्ठित हुए और राजा बिन्दुसार के स्वर्ग सिधारने पर मन्त्रियों की सहायता से वे मगध के चक्रवर्ती सम्राट् अधिष्ठित हुए, ईसा से २७३ वर्ष पूर्व वे सम्राट् हुए राज्या भिषेक चार वर्ष पश्चात् हुआ। साम्राज्य पहिले ही से सुसंगठित था। अशोक ने शासन प्रबन्ध किया था। और सुव्यवस्था की शक्ति भी

अ[illegible]ी रखते थे। अधि[illegible] पा[illegible]र प्रचण्ड शासन करने लगे। मतभेद के कारण मन्त्रि मण्डल के अनेक सभासद मार डाले। अशोक वृक्ष का पत्र तोड़ने पर राजा का अनादर कहा जा कर ५०० [illegible] को मारना चाहा। लोगों ने समझाया कि राजा होके यह हत्या वह स्वयं न करे। तब उनने मातृ पितृ हन्ता एक चन्द्रगिरिक नामी क्रूर नृशंस हत्यारा नियत किया और वध करवाया। इस हत्यारे को काम देने के लिये उसने एक विशाल आकर्षक प्रसाद निर्माण कराया। उसकी सुन्दरता से आकृष्ट हो जो भीतर जाता वह मार डाला जाता। एक समय बाल पण्डित नामक साधु अन जानते भीतर गये। उन्हें मारने के पहिले सात दिन का अवकाश दिया गया। सातवें दिवस जलती भट्टी के खौलते कड़ाह में उन्हें डाल दिया। मरने की कौन कहे थोड़े ही काल पश्चात् वे कड़ाही से निकले कमल पुष्प पर अक्षत बैठे दिखे। चन्द्रगिरिक ने राजा को समाचार भेजा। सभी ने यह अनहोना दृश्य देख अचम्भा माना। राजा के अचरज का ठिकाना न था। उनने क्षमा मांगी और वह प्रासाद ढहा दिया गया। इन कथाओं की तथ्यता संदिग्ध होते भी इतना निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि प्रारम्भ में महाराज अशोक अनर्गल शासक संभवतः रहे होंगे, तभी तो ऐसी दन्त कथाएं प्रचलित हुई।

आत्मारोहण का समाचार पाके सेना लेकर सुसीम पाटलिपुत्र राजधानी पर चढ़ आये। और परास्त हो परलोक सिधारे।

वीताशोक के बारे में कहा जाता है कि वह तीर्थ्य सम्प्रदाय का उपासक हो बौद्ध साधुओं को धन लिप्सा और सुख लोलुपता का लाञ्छन लगाता था। अशोक ने उसे पकड़वा के सात दिन का अवसर विचारने को दिया। प्राण भय से व्याकुल होने पर उसके विचार बदल गये। वह पाटली-पुत्र ही में निवास स्थान पाके रहने लगा। उस निवास स्थान को चीनी यात्री ह्वैनसाङ् ने ईसा की सातवीं शताब्दी में देखा था।

यद्यपि अशोक का साम्राज्य चन्द्रगुप्त ही के समय में पश्चिम में दूर तक फैला था और दक्षिण में बिन्दुसार ने बहुत बढ़ाया था, पर पूर्व की ओर कलिंग अथवा त्रिकलिंग राज्य अनवरत सनातन धर्मानुयायी था। उनसे युद्ध छिड़ा। दोनों प्रबल शासक थे। त्रिकलिंगाधिपति ने वीरता से चिर-काल पर्यन्त सामना किया। जिससे दारुण नर संहार हुआ। अनेक कठिनाई, आपत्ति, महामारी आदि का क्लेश झेलना पड़ा। क्रूर हत्या के वीभत्स दृश्यों की रौद्रमूर्ति ने हृदय को जर्जरित कर दिया। प्रायः एक लाख मनुष्य मारे गये और डेढ़ लाख बन्दी हुए। ज्यों त्यों कर षड्यन्त्र द्वारा विजय तो अशोक की हुई। पर इस विजय से उग्र शासक अशोक के हृदय पर भी दारुण चोट लगी चित्त पश्चात्ताप से भर उठा।

इस विजय से अशोक वर्द्धन के राज्य की सीमा बंगाल के आसाम से लेकर पश्चिम में अरब सागर तक पहुंची। वरन अरब सागर के उत्तर में भी दूर तक फैली थी। दक्षिण में चेर (केरल) चोल और पाण्ड्य राज्य को छोड़ सम्पूर्ण भारत प्रायद्वीप उनकी आधीनता में था। इतना भारी भारत का एक छत्र एक नृपति आज लों अद्यावधि कोई नहीं देख पड़ा। ब्रिटिश राज्य पश्चिम में उतना नहीं बढ़ा है। और बीच २ में

अनेक छोटे बड़े देशी विदेशी शासक हैं। अकबर, औरंगजेब से समर दक्षिण राज्य में उतना न बढ़ा था। कनिष्क समुद्र गुप्त वा हर्षवर्धन के काल में भी विस्तार उतना न था। इतने बड़े देश का शासन मन्त्रियों, पदाधिकारियों तथा दूतों की सहायता से ४१ वर्ष तक बड़ी ही योग्यता से महाराज ने चलाया। बड़े २ महत्व के कार्य स्थापत्य कला वास्तु विद्या के चिह्न जो छोड़ गये हैं उन्हें देख दांतों तले उंगली दबानी पड़ती है। फिर धार्मिक क्षेत्र में जो कर गये उसका विवरण आगे दिया है। उन सब का ध्यान करने पर बुद्धि चकित हो जाती है क्योंकि शासक और धार्मिक शिक्षक का ऐसा एक ही पुरुष में योग इतिहास में कहीं (भारत ही में नहीं) देखने को नहीं मिलता। अशोक की पहिली पत्नी का नाम चारुवाकी और दूसरी का असंध मित्रा था। असंध मित्रा के एक पुत्र कुनाल था। उसका नाम धर्म विवर्धन भी पाया जाता है। महेन्द्र तथा तिष्य नामक दो भाई तथा संघमित्रा नामक एक कन्या का भी उल्लेख मिलता है। दूसरी रानी के मर जाने पर एक तिष्यरक्षिता नामक नवयुवती से अशोक ने वय ढलते समय विवाह किया। तिष्यरक्षिता ने राजकुमार पर मुग्ध हो अनुचित प्रस्ताव किया राजकुमार मर्माहत हुए और स्वीकार करने में सर्वथा असमर्थ रहे। पद दलित सर्पिणीवत् कुद्ध रानी ने राजा से कहके कुनाल को तक्षशिला का राज प्रतिनिधि बनवा के दूर हटवा दिया और महाराज की रुग्णावस्था में शासनाधिकार प्राप्त कर राजमुद्रांकित पत्र तक्षशिला में मन्त्री के पास भेजा कि कुनाल की आंखें तुरन्त निकाल के वह वन में छोड़ दिया जाये। मन्त्री को चिन्तित देख राजमुद्रा को पहिचान कुमार ने राजाज्ञा शिरोधार्य की। अन्धा होने पर भिक्षा द्वारा निर्वाह करता वह पाटली पुत्र आया। और राजप्रासाद के समीप करुणस्वर में गान गाया। महाराज ने पुत्र के शब्द पहिचान के बुलवाया और उसकी उस दशा का कारण विदित किया। रानी तिष्यरक्षिता और उसके सहयोगी अधिकारी गण कठोर दण्डित हुए। कुनाल को महात्मा घोष के पास ले गये और विनय की कि उसकी दृष्टि लौटा दीजिये। महात्मा घोष ने उपदेश का समय नियत किया और श्रोताओं से कहला दिया कि आंसू एकत्रित करने को एक २ बर्तन सब कोई लेता आवे। नियत समय पर महात्मा घोष ने एक सारगर्भित, विवेचना पूर्ण बौद्ध सिद्धान्त पर व्याख्यान दिया और श्रोतागण आंसू बटोरते गये। फिर सब आंसू एकत्रित कर उनने कहा मैंने जो सिद्धान्त की व्याख्या प्रतिपादित की है वह ठीक न हो तो मुझे कुछ नहीं कहना है। और यदि वह ठीक है तो इन आंसुओं से धोने पर राजकुमार कुनाल को आंखें फिर प्राप्त हो जावें। तदनन्तर आंसुओं से धोने पर राजकुमार को आंखें फिर प्राप्त हुईं और वह पूर्ववत् देखने लगा। इस कथा के विविध रूपान्तर मिलते हैं। उनमें तथ्य की साधारण मात्रा निर्धारण करना कठिन नहीं। तिष्यरक्षिता का अनुचित प्रस्ताव और राजकुमार का विवासन सत्य हो सकता है। आंखें न निकाली गई होंगी। महाराज ने समाचार पाया होगा, महात्मा से सहायता मांगी होगी और घटना चक्र से यथावसर राजकुमार प्रकट हुए होंगे। तिष्यरक्षिता दण्डित हुई होगी।

कलिंग विजय के पश्चात् एक दिन महाराज आखेट को गये और एक हरिण पर बाण

चलाया। हरिण माना उसे किसी साधु ने गोद में उठा लिया। महाराज बोले मेरा आहत मृग तुम नहीं ले सकते उसे मैंने मारा है और भोजन को ले जाऊंगा। मेरा भोजन छीनने की वृथा चेष्टा मत करो। साधु ने कहा कि यदि स्वतन्त्र विचरते जीव को वाण मारने का तुम्हें अधिकार है तो क्या मुझे एक आहत पीड़ित जीव की दुःख निवृत्ति की चेष्टा का भी अधिकार नहीं? मैं इसकी सेवा करूंगा, इसे जिलाऊंगा। राजा बोलें घन पूर्वक भूत दया की यह प्रवृत्ति राजा के हृदय में बैठ गई। उसे कलिंग युद्ध में अपने द्वारा सम्पन्न अनेक क्रूर यातनाओं, व्यथाओं पीड़ाओं पर सन्ताप और परिताप उदय हुआ। वह उस साधु के साथ आश्रम को गया वहां मोगाली पुत्र महात्मा तिष्य की सम्मति से उपदेश के लिये आचार्य उपगुप्त के पास भेजा गया। कुछ काल में उपगुप्त की शिक्षा से महाराज के चित्त में स्थायी परिवर्तन उदय हुआ जिसके फल स्वरूप केवल देशों के सम्राट् ही न रहे वरन आगे चलकर धर्म के पालक अद्वितीय धार्मिक सम्राट् होगये। आचार्य उपगुप्त की शिक्षा से सम्राट् अशोक वर्धन ने बौद्ध धर्म दीक्षा ग्रहण की और प्रायः उसी समय (अभिषेक के चार वर्ष पश्चात्) उनके भाई तिष्य, भतीजे अग्नि ब्रह्म और पौत्र सुमन ने भी दीक्षा ग्रहण की। बौद्ध धर्म के उपदेश महाराज के चित्त पर पहिले ही से स्थान पा रहे थे पर अब सम्राट् के सनातन धर्म को छोड़ बौद्ध धर्मानुयायी हो जाने पर बौद्ध धर्म को राजाश्रय प्राप्त हुआ। महाराज का कहना था कि तलवार के बल से देशों को जीतना राजाओं का धर्म नहीं है। यदि परवश उन्हें युद्ध के लिये शस्त्र ग्रहण करना आवश्यक होवे तो उन्हें धैर्य और सहिष्णुता से काम लेना चाहिये क्योंकि वास्तविक विजय वही है जो धैर्य और धर्म बल से प्राप्त की जाती है।

इस परिवर्तन के पश्चात् एक महती सभा की आयोजना हुई। उसमें आधीन भूपालगण और विविध कर्मचारी उपस्थित हुए और अशोक को 'देवानाम्प्रियः' अर्थात 'देवताओं को प्यारे' उपाधि से विभूषित किया। इस समय से महाराज बौद्ध धर्म प्रचारक के रूप में विशेष रुचि से भाग लेने लगे। शासन समीचीन रूप से चलता ही रहा पर धर्म प्रचार में उत्साह पूर्वक योग देने लगे। इतना ही नहीं वरन राज कर्मचारियों का यह कर्तव्य निर्धारित हुआ कि जब दौरे में भिन्न २ स्थानों पर जावें तो सभायें करके जनता को धर्म की शिक्षा देवें। जीव दया के लिये बहुत से नियम बनाये गये। सब सम्प्रदायों को धार्मिक स्वतन्त्रता के लिये भी व्यवस्था थी।

बौद्ध-धर्म-दीक्षा ग्रहण करने के पश्चात् आचार्य उपगुप्त की प्रेरणा से किसी समय महाराज की इच्छा तीर्थ भ्रमण की हुई। पहिले नेपाल की ओर गये। मार्ग में पांच स्थानों पर बड़े स्तम्भ खड़े करवाये। वहां से वे लुम्बिनी कानन गये। यहीं पर भगवान् बुद्ध की माता माया देवी को प्रसव वेदना हुई थी और सिद्धार्थ (गौतम बुद्ध) का जन्म हुआ था। फिर बुद्ध के पिता शुद्धोदन की राजधानी कपिलवस्तु पहुंचे। दोनों स्थानों पर स्तम्भ खड़े करवाये। फिर वे काशी में सारनाथ गये। इसी स्थान पर बुद्ध ने सर्व प्रथम शिक्षा देके धर्म चक्र प्रवर्तित किया था। सारनाथ से श्रावस्ती गये। वहां बुद्ध ने कुछ काल निवास

किया। तदनन्तर वे बुद्ध गया पहुँचे जहां बोधि वृक्ष के नीचे भगवान् बुद्ध को ज्ञान प्रस्फुरित हुआ था। वहां से कुशीनगर होते वे राजधानी पहुंचे। कुशीनगर में भगवान् बुद्ध ने शरीर परित्याग कर निर्वाण प्राप्त किया था। इस तीर्थ यात्रा का वर्णन अशोकावदान तथा रुम्मिन देई (नेपाल तराई) के स्तम्भ से उपलब्ध हुआ है।

अशोक ने स्थान २ पर शिला लेख उत्कीर्ण कराये कतिपय स्थानों में स्तूप विहार मठ आदि निर्माण कराये। कई स्थानों में पर्वतों को खोद के उनमें गुफाएँ वा मन्दिर बनवाये। कितने स्थानों पर पर्वतों को सम कराके उन पर लेख उत्कीर्ण कराये। उन्हें कोई उठाके स्थानान्तरित नहीं कर सका। कहीं २ ऐसे उत्कीर्ण पर्वत के ढोंके गिर कर नीचे आगये लगते हैं। इन स्तूपों, विहारों मठों, स्तम्भों तथा जीवित पर्वत पर उत्कीर्ण लेखों तथा गुफाओं से ज्ञान पड़ता है कि अशोक वर्द्धन के राज्य काल में स्थापत्यकला और वास्तु विद्या परम उन्नत स्थिति को प्राप्त हो चुकी थी। विस्तृत साम्राज्य के सभी स्थानों में ये लेख पाये जाते हैं; जिनसे विदित होता है कि राज्य भर में कुशल वास्तुविद्या विशारद योग्य जन उपलब्ध थे। राजधानी से आज्ञा निकलती थी और दूर २ स्थानों में उनका आयोजन होकर कार्य होता था। साक्षात् पर्वत को काट कर सुन्दर आलेख्यमय गुफा, मन्दिर, स्तम्भ, हस्ती आदिको देख वा चित्रों से उनकी कल्पना कर आश्चर्य होता है कि महाराज की प्रबन्ध शक्ति धार्मिक रुचि और आस्था तथा कार्य पटु सहायक कैसे योग्य रहे होंगे।

कह आये हैं कि शिला लेख स्तम्भों पर्वतों जंगलों में सर्वत्र पाये जाते हैं। अफगानिस्तान, सीमा प्रान्त मद्रास सिन्ध आदि में भी पाये जाते हैं। जबलपुर जिले के रूपनाथस्थान में ऐसे जंगल में पर्वत पर लेख उत्कीर्ण हैं कि दो सहस्र वर्ष पश्चात् लेख की प्रतिलिपि लेते समय कनिंघम साहिब को एक तेंदुआ २० गज की दूरी से देखता घात में बैठा था। इन लेखों के द्वारा बौद्ध धर्म के सिद्धान्तों को महाराज इस देश में अमर कर गये हैं। स्तम्भ टूट गये मन्दिर जीर्ण हो गये। लेख कहीं २ घिस गये पर फिर भी अनेक स्थानों में बने ही हुए हैं। और चट्टानों को तो हटाना ही असम्भव है। अब भी नये २ शिला लेख मिलते जाते हैं। और यह नहीं कहा जा सकता कि उनने कितने शिला लेख कहां २ खुदवा दिये हैं। इन लेखों में देवानाम्प्रियः या पियादसी (प्रियदर्शी) के नाम से महाराज का उल्लेख हुआ है। देवानां प्रियः पहिले तो अक्षरशः आदर सूचक विशेषण था। पीछे से संस्कृत में देवानाम्प्रियः ताने के स्वरूप में प्रचलित हो पड़ा। ससुराल में जमाई बाबू का जो अर्थ होता है, साले के यहां बहनोई का जो भगिनी भग भाग्य भवो विभवः होता है वैसे ही देवानाम्प्रियः का अर्थ योग्यता न रखने पर भी भाग्य से सुखी जन होता है।

अशोक की धर्म लिपियों के भाव के कुछ उदाहरण यहां दिये जाते हैं, देव प्रिय, प्रियदर्शी राजा इस प्रकार कहते हैं। अभिषेक के बारहवें वर्ष इस प्रकार के आदेश मैंने दिये हैं। राज्य में प्रति पांचवें वर्ष एक सभा हो जो इस प्रकार शिक्षा प्रचार का प्रबन्ध करे, माता, पिता, मित्रों, साथियों और सम्बन्धियों की धर्मयुत सेवा करना उचित है। ब्राह्मणों और श्रमणों को भिक्षा देना, प्राणियों के जीवन का सत्कार करना, अपव्यय तथा कटु

वचन से बचना अच्छा है। अतीत काल से यहां जीवों के प्रतिनिष्ठुर व्यवहार के भाव चले आरहे हैं। आज देवताओं के प्रिय, धर्मकार्य के बड़े भक्त ने धर्म को प्रकट किया आज जीव धारियों का सत्कार होता है। प्राचीन काल में गुप्तचरों से सुनने की प्रथा न थी। कर्मचारी गण जिनपर प्रजा का भार है मुझ से मिल सकते हैं। मैं प्रजा के सम्बन्ध में सब बातें उनसे जान लेता हूं। प्राचीन काल में जी बहलाने के लिये आखेट किया जाता था मैं इस प्रकार का मनोरञ्जन बन्द करता हूं। प्रियदर्शी सम्राट् के सब उद्योग आगामी जीवन में मिलने वाले सुखों तथा जीवन मरण के बन्धनों से मुक्त होने के लिये हैं। यह तब तक कठिन है जब तक कि लोग अपने को सब वस्तुओं से अलग करने का दृढ़ उद्योग न करें। धर्म, दया, तो दान सत्य और पवित्र जीवन में है इसलिये मैंने मनुष्यों, चौपायों, पक्षियों और जल जन्तुओं के निमित्त सब प्रकार के दान दिये हैं पीने के लिये जल का भी प्रबन्ध किया है।

धर्म प्रचार के लिये अशोक ने देश विदेश में विद्वान् बौद्ध साधुओं को भेजा। फारस अरब तिब्बत नैपाल ब्रह्म देश चीन देश में विद्वान बौद्ध भिक्षु भेजे। ये स्वयं धर्म में विश्वास रखने वाले परोपकारी सहनशील उपदेशक थे। इनकी सहिष्णुता और योग्यता पर विचार करने पर चित्त आश्चर्य मग्न हो जाता है। ये लोग दूर देश की यात्रा करते थे। विदेशीय ऋतु विपर्यय भोजन के भेद सहते थे। नई भाषा सीखते थे। उनकी स्थानीय भाषाओं में अपने उपदेश देते तथा स्थानीय विद्वानों के धार्मिक सिद्धान्तों का निराकरण करके अपना मत धीरज धर के पोषित करते रहे होंगे तब लोग इनके मत को स्वीकार करते रहे होंगे। यह अशोक के ही उद्योग का फल है कि आज दो सहस्र वर्ष पश्चात् भी भारत के उत्तरीय और पूर्वीय देशों में बौद्ध धर्म प्रचलित है। लंका में प्रचार के लिये महाराज के भाई महेन्द्र और महाराज की पुत्री संघमित्रा स्वयं गई थीं। इनका बौद्ध धर्म में विश्वास कितना स्नेहमय रहा होगा कि परोपकार बुद्धि से विदेश में जाके जीवन बिताया। इनके पहिले भी प्रचारक भिक्षुगण गये रहे होंगे। पर अशोक ने क्रम से सभी देशों में उपदेशक भेजे और अपने विश्वास को कार्य रूप में परिणत किया और राजकीय कोष को धर्म प्रचार में लगाया।

जिन प्रान्तों वा देशों में जो प्रचारक भिक्षु भेजे गये उनकी सूची यह है काश्मीर और गान्धार (कन्दहार) देशों में मज्झान्तिक भिक्षु गये। महिषमण्डल (मैसूर) देश में महादेव भिक्षु गये। बनवासी (दक्षिणी कनारा) देश में रक्षित भिक्षु गये। अपरान्तक (उत्तरी बम्बई) प्रान्त में योनधर्म रक्षित भिक्षु गये। महाराष्ट्र (पश्चिमीय और मध्य भारत) में महा धर्म रक्षित भिक्षु गये। योन प्रान्त (सीमा प्रान्त) में महारक्षित नामक भिक्षुक गये। हिमवन्त (हिमालय) में मज्झिम और काश्यप भिक्षु गये। सुवर्ण भूमि (पेगू और मौलमीन) में शोण और उत्तर नामक भिक्षु गये। लंका में महेन्द्र वा ब्रह्मदेश और उनकी भतीजी संघ मित्रा धर्म प्रचार को गई।

अपूर्ण

भजन

१

अखियां गुरु दर्शन की प्यासी ॥ टेक ॥
देखन चाहें कमल नयन को हरदम रहत उदासी ॥
केशर तिलक माल मोतियन की वृन्दावन के वासी ॥
जे ता लागे वोही तन जाने लोगन के मुख हांसी ॥
नेह लगाय त्यागदई तृण सम डाल गये गल फांसी ॥
कहत कबीर सुनो भाई साधो लूंगो करवत काशी ॥

२

जगत् में हरि सम मित्र न कोई ॥ टेक ॥
भांति २ के देत पदारथ कृपा नीर से धोई ॥
जो नर हरि सें करे मित्रता आप हरि सम होई ॥
हरि सुमरण सत्संग जगत् में सार पदारथ दोई ॥
भजो कन्हैयालाल हरि को वृथा जन्म मत खोई ॥

३

प्रभुजी भले बुरे हम तेरे ॥ टेक ॥
पेट भरे पर महा आलसी, सोवत सांझ सवेरे ॥
तुम समदर्शी अधम उधारन, चित न धरो अवगुण मेरे
काम क्रोध अरु ममता तृष्णा, रहत सदा नित घेरे ।
तुम बिन कौन सहायक मेरो, वैरी बहुत घनेरे ॥
माया वस ये जन्म गंवाया भटक भटक बहुतेरे ॥
गोपी नाथ आस तज सबकी, होउ श्याम के चेरे ॥

४

कोई पीवो राम रस प्यासा रे ॥ टेक ॥
गगन मण्डल में अमृत बरसै,
पीलो सांसम सांसा रे ॥ १ ॥
ऐसा महंगा अमी विकत है,
छै रती बारह मासा रे ॥ २ ॥
जो पीवे सो जुग जुग जीवे,
कबहुं न होत विनाशा रे ॥ ३ ॥
इस रस कारण हुए नृप जोगी,
छोड़े भोग विलासा रे ॥ ४ ॥
सहज सिंहासन बैठे रहते,
भस्म लगाय उदासा रे ॥ ५ ॥
गोपीचन्द भरथरी रसिया,
अरु कबीर रैदासा रे ॥ ६ ॥
गुरु दादू प्रसाद को चुनके,
पीया सुन्दर दासा रे ॥ ७ ॥

५

भाव के भूखे हैं भगवान् ॥ टेक ॥
भाव न हो सच्चा जो उर में,
तो सब व्यर्थ विधान ॥ १ ॥
भाव नहीं तो मनुज देह यह,
जीवन मृत समान ॥ २ ॥
भाव शून्य आदर सब झूठा,
झूठा है सम्मान ॥ ३ ॥
सत्य हृदय का शुद्ध भाव ही,
जग में परम प्रधान ॥ ४ ॥
भाव होय तो ईश्वर दीखे,
भाव बिना पाषाण ॥ ५ ॥

REG DNo. L 3077

भक्ति प्रेस में मिलने वाली पुस्तकें ।

१. भगवद्गीता संस्कृत तथा भाषा टीका सहिता	मूल्य	॥=)
२. भगवद्गीता दशम अध्याय पर्यन्त ...	"	।-)
३. गीता मूल (मोटा टाइप)		मूल्य नित्य पाठ
४. वेदोपनिषद्		।-)
५. अष्टोत्तरशतमन्त्रमाला	"	-)।
६ ज्ञानधर्मोपदेश	"	-)॥
७. भक्ति ज्ञान योग संग्रह	"	=)॥
८. सत्य शब्द संग्रह (गुटका)	"	=)
९. सत्य शब्द संग्रह	"	॥=)
१०. शब्द सदाचार संग्रह	"	-)॥
११. शब्द सार संग्रह	"	-)।
१२. शब्दसंग्रह	"	-)॥
१३. सारसंग्रह	"	।)
१४. भाषा फक्किका प्रकाश	"	।-)
१५. मनुस्मृति सार	"	≡)।
१६. भक्ति चिन्तामणि	"	।≡)
१७. भगवद्भक्तांक	"	॥=)
१८. भगवदंक	"	॥।)
१९. गवांक	"	१)
२०. महात्मांक	"	१)

नोटः-एक रुपये से कम मूल्य की पुस्तक मंगाने वालों को डाक महसूल सहित टिकट भेजने चाहियें ।

मिलने का पताः-

श्री भगवद्भक्ति आश्रम, रेवाड़ी ।

मुद्रक तथा प्रकाशक [illegible] ब्रह्मचारी "भक्ति प्रेस" में [illegible] आश्रम, रेवाड़ी